

ब्रह्म ज्ञान

डा.चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन 4
अ.क्र. .विषय 'दर्पण पृ.सं.
1ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप 7
2पाखंड का उच्छेद 8
3अविद्या,माया9
4आत्मा,जीव10
5निष्काम ,कार्य11
6सत्य की शाश्वत विजय 11

7भक्ति और ज्ञान 17
8जागृत जीवन 17
9सामाजिक कुरीतियां 18
10जीवन मुक्ति19
11सत्य की शाश्वत विजय 19
12व्यवहारिक जीवन में ब्रह्मज्ञान 20
13गुरुतत्व की सत्यता20
14अहंकार,वासना21
15मृत्यु का रहस्य22
16योग,ध्यान 22
17वैश्विक दर्शन23
18ब्रह्म ज्ञान का 24
19सत्य का साक्षात्कार 25
20साधक का व्यवहारिक जीवन 25
21अंतर्यात्रा का सर्वोत्कृष्ट सार26
22शंका समाधान27
23आधुनिक समाज में33
24उपनिषद और अद्वैत दर्शन34
25सत्य मार्ग पर35
26आकांक्षाओं का द्वन्द 35
27युवाओं का सही दिशा निर्देशन38
28गृहस्थ जीवन और ब्रह्मज्ञान40
29वृद्धावस्था,शारीरिक व्याधियां43
30अद्वैत वेदान्त45
31अद्वैत मनोविज्ञान 47
32अद्वैत काव्यात्मक अभिव्यक्ति 48
33निर्भय मानवता का आवाहन48
34वाह्य भेषाचार49
35लोकसंग्रह,सामाजिक न्याय51
36भाषा,शब्दजाल52
37अद्वैत कला53
38आधुनिक साधक दिनचर्या 53
39अध्यात्म और राजनीति 55
40मृत्युंजय साधना55
41आधुनिक विज्ञान 56
42अद्वैत क्रान्ति57



ब्रह्म ज्ञान

डा.चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

आत्म-साक्षात्कार और
परम सत्य की ओर एक यात्रा

ब्रह्म ज्ञान: सत्य का साक्षात और अज्ञान का उच्छेद

समर्पण

यह ग्रन्थ उन सभी जिज्ञासु आत्माओं, सत्य-शोधकों और विचारकों को समर्पित है जो किसी वेश, बाह्य आडंबर, संकीर्ण मत या पाखंड के जाल में फँसे बिना परम सत्य की खोज में निरंतर अग्रसर हैं।

प्राकथन (Preface)

सत्य किसी देश, काल, पंथ या संप्रदाय की निजी संपत्ति नहीं है। सत्य वह शाश्वत, स्वयं-प्रकाशित ज्योति है जो अज्ञान, भय और संकीर्णता के गहनतम अंधकार को छिन्न-भिन्न करने का सामर्थ्य रखती है।

आज का मानव समाज एक अजीब से विरोधाभास में जी रहा है। एक तरफ जहाँ विज्ञान और तकनीक ने बाह्य जगत में अभूतपूर्व प्रगति की है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य का आंतरिक जीवन भ्रम, मानसिक तनाव, भय, अंधविश्वास और पाखंड के जाल में उलझकर रह गया है। अध्यात्म के नाम पर आज बाज़ार सजे हुए हैं। मुक्ति, शांति और ध्यान को एक 'उत्पाद' बनाकर बेचा जा रहा है। बाह्य आडंबरों, विचित्र वेशभूषाओं, भस्म-लेपन, अखाड़ों की पदवी-संस्कृति और चमत्कार के झूठे दावों को ही 'ब्रह्म ज्ञान' मान लेने की भूल की जा रही है।

इस भटकाव और मानसिक दासता के युग में **'ब्रह्म ज्ञान: सत्य का साक्षात और अज्ञान का उच्छेद'** का प्रादुर्भाव केवल एक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना नहीं, बल्कि विवेक की वह तलवार है जो सत्य और असत्य के अंतर को स्पष्ट रूप से काट कर रख देती है।

यह ग्रन्थ किसी नवीन मत, संप्रदाय या पंथ की स्थापना का प्रयास नहीं है। यह अद्वैत वेदांत के उस परम सत्य का पुनरुद्घोष है जो उपनिषदों, भगवद्गीता और अष्टावक्र गीता की आत्मा है। इसका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य को शब्द-जाल, धार्मिक भय और मध्यस्थों के शोषण से निकालकर उसकी अपनी जाग्रत चेतना—अर्थात् उसके वास्तविक 'ब्रह्म स्वरूप'—में प्रतिष्ठित करना है।

इस ग्रन्थ की यात्रा ४२ अध्यायों में अत्यंत तार्किक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक रूप से विकसित हुई है:

- सैद्धांतिक शुद्धता एवं विवेक: ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप, माया, अविद्या और आत्मा-ब्रह्म के अभेद संबंध ('तत्त्वमसि') का ऐसा विवेचन जो किसी भी प्रकार की कूपमंडूकता को स्वीकार नहीं करता।

- पाखंड एवं भेषाचार का कठोर उच्छेद: नागा परंपरा, बाह्य नग्नता, शारीरिक हठ-तपस्या, गुरुडम और 'महामंडलेश्वर' जैसी संस्थागत पदवियों के अहंकार का निष्पक्ष और अकाट्य खंडन।
- विज्ञान और दर्शन का अप्रतिम समन्वय: आधुनिक क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics), 'ऑब्जर्वर इफेक्ट' और कॉस्मोलॉजी के साथ अद्वैत के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का वैज्ञानिक तादात्म्य।
- व्यावहारिक जीवन का समाधान: युवाओं की हताशा, महत्वाकांक्षाओं का द्वंद्व, बच्चों का विवेकपूर्ण पालन-पोषण, गृहस्थ जीवन में प्रेम और असंगता का संतुलन, बीमारियों का दर्द और मृत्यु के भय से मुक्ति (अभय पद) का व्यावहारिक मार्ग।
- सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति: अद्वैत पर आधारित एक ऐसी जीवन-संहिता जो जातिगत भेदभाव, धार्मिक शोषण और उपभोगवाद का अंत कर एक जाग्रत, निर्भय और अखंड विश्व-कुटुंब की नींव रखती है।

यह ग्रन्थ केवल बंद आँखों से ध्यान लगाने का उपदेश नहीं देता, बल्कि **"**जागृत अवस्था में जिया गया जीवन ही वास्तविक समाधि है**"**—इस सिद्धांत को प्रतिपादित करता है।

यह प्राकथन उन सभी जिज्ञासुओं, विचारकों, युवाओं और सत्य-शोधकों को सादर आमंत्रण है जो भय और अंधश्रद्धा के आवरण को फाड़कर परम सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं। जो विचार अपनी विवेक-कसौटी पर खरा उतरे, केवल उसी को स्वीकार करें; क्योंकि ब्रह्म ज्ञान मानने (Belief) का विषय नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर जानने (Realization) का विषय है।

अज्ञान की निद्रा से जागिए, अपने निर्भय स्वरूप को पहचानिए और इस महा-ग्रन्थ की विचार-यात्रा में प्रवेश कीजिए।



डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

25 जुलाई1942 को जन्मे भिवानी (हरियाणा)के लेखक, शोध कर्ता अंतर्राष्ट्रीय संस्था **World Book of Records (London)**द्वारा सम्मानित इनका साहित्य फ्री Bhajansamratchandra.Com पर उपलब्ध है ज्ञान की ज्योति के लिये जिन्हे विश्व भर के जिज्ञासुओं द्वारा गूगल के माध्यम से सराहा जाता है.मातृभाषा हिंदी के संरक्षण और उत्थान हेतु सन 1957 के ऐतिहासिक आंदोलन में सक्रिय भागीदारीऔर कारागार में रहते हुए भी हिंदी साहित्य के सर्जन की उनकी लेखनी कभी नहीं रुकी .विश्वास है कि समतामूलक संदेश को प्रसारित करती यह पुस्तक पाठकों को जीवन में वैचारिक स्पष्टता औरआत्मदीप्ति का प्रकाश अवश्य फैलाएगी।.

डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

बिचला बाजार, भिवानी -127021(हरियाणा)

मोवाइल -9992075303

सम्पूर्ण डिजिटल लायब्रेरी के लिए Bhajansamratchandra. Com



अध्याय १: ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप — भ्रम बनाम सत्य

१. बाह्य आडंबर और वास्तविक समाधि

अधिकांश संसार बाह्य क्रियाकांडों, भस्म धारण करने, विशेष वेशभूषा और हठयोग की क्रियाओं को ही अध्यात्म मान बैठा है। यह अज्ञान का चरम रूप है। केवल आँखें मूँदकर बैठ जाना या संसार से भाग जाना ध्यान नहीं है।

"जागृत अवस्था में किया गया ध्यान ही वास्तविक समाधि है।"

जब चेतना अपनी संपूर्ण सजगता में, जीवन के प्रत्येक क्षण में और हर कर्म में जाग्रत रहती है, वही ब्रह्म का सच्चा सानिध्य है। सोई हुई या भ्रमित चेतना ही अज्ञान है, और पूर्णतः जाग्रत चेतना ही 'ब्रह्म' है।

२. सर्वव्यापी ब्रह्म

धर्मग्रंथों का स्पष्ट मत है कि ब्रह्म निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी है। अज्ञानता के कारण मनुष्य ने उसे सीमाओं, मूर्तियों और कर्मकांडीय अनुष्ठानों तक सीमित कर दिया है।

ऋग्वेद (१.१६४.४६): *"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक ही है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।)*

ईशावास्योपनिषद् (मंत्र १): *"ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।" (इस जगत् में जो कुछ भी स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है।)*

"ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।"
(इस जगत् में जो कुछ भी स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है।)
जब परम तत्त्व कण-कण में विद्यमान है, तो किसी मध्यस्थ, ठेकेदार या पाखंडी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता केवल अपने भीतर छिपे अज्ञान के आवरण को हटाने की है।

अध्याय २: पाखंड का उच्छेद और विवेक की जागृति

१. अंधकार और असत्य की पहचान

सत्य के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक पाखंड है। जब अध्यात्म का स्थान भय, व्यापार और अंधविश्वास ले लेते हैं, तब धर्म का पतन हो जाता है। कठोपनिषद् में ऐसे अज्ञानी और ढोंगी मार्गदर्शकों के विषय में स्पष्ट चेतावनी दी गई है:

कठोपनिषद् (१.२.५): *"अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।" (अविद्या के भीतर रहते हुए भी स्वयं को ज्ञानी और पंडित मानने वाले अज्ञानी लोग उसी प्रकार भटकते हैं, जैसे अंधों द्वारा ले जाए जाने वाले अंधे।)*

"अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।"
(अविद्या के भीतर रहते हुए भी स्वयं को ज्ञानी और पंडित मानने वाले अज्ञानी लोग उसी प्रकार भटकते हैं, जैसे अंधों द्वारा ले जाए जाने वाले अंधे।)
२. वैश्विक धार्मिक ग्रंथों में सत्य का संदेश-
सत्य की कोई भौगोलिक या धार्मिक सीमा नहीं होती। संसार के समस्त प्रामाणिक ग्रंथों और विचारकों ने आंतरिक विवेक और सत्य को ही प्रमुखता दी है:

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २, श्लोक १६): "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" (असत्य वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत्य का कभी अभाव नहीं होता।)

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।"
(असत्य वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत्य का कभी अभाव नहीं होता।)

धम्मपद (बौद्ध दर्शन): "न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥" (घृणा से घृणा कभी शांत नहीं होती, प्रेम और सत्य से ही शांत होती है—यही सनातन नियम है।)

"न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥"
(घृणा से घृणा कभी शांत नहीं होती, प्रेम और सत्य से ही शांत होती है—यही सनातन नियम है।)

बाइबल (जॉन ८:३२): ***"And you will know the truth, and the truth will set you free."*** (और तुम सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा।)

"And you will know the truth, and the truth will set you free."
(और तुम सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा।)

अध्याय ३: अविद्या, माया और पाखंड का यथार्थ स्वरूप

१. अविद्या का स्वरूप और उसका निवारण

अज्ञान (अविद्या) केवल ज्ञान का न होना नहीं है, अपितु असत्य को सत्य, अनित्य को नित्य और दुःख को सुख मान लेना ही अविद्या है। संसार में फैले पाखंड का मुख्य कारण यही अविद्या है।

महर्षि पतंजलि (योगसूत्र २.५): "अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।" (अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना ही अविद्या है।)

"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।"
(अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना ही अविद्या है।)

जब तक मनुष्य अपनी चेतना को जाग्रत नहीं करता, वह बाह्य अनुष्ठानों, टोने-टोटकों

और ढोंगी गुरुओं के बहकावे में आकर अपनी ऊर्जा और समय नष्ट करता रहता है।

२. पाखंड और धार्मिक व्यवसाय का खंडन

धर्म का अर्थ है धारणा करना—सत्य, करुणा और विवेक को जीवन में उतारना। परंतु जब धर्म को भय और लालच का साधन बना दिया जाता है, तब वह पाखंड बन जाता है।

मुंडकोपनिषद् में ऐसे केवल कर्मकांड पर निर्भर रहने वाले ढोंग की तुलना फूटी हुई नौका से की गई है:
मुंडकोपनिषद् (१.२.७): "प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।" (ये यज्ञ और बाह्य कर्मकांड अत्यंत कमज़ोर नौकाओं के समान हैं। जो अज्ञानी इन्हें ही परम श्रेय मान लेते हैं, वे बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में गिरते हैं।)

"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।"
(ये यज्ञ और बाह्य कर्मकांड अत्यंत कमज़ोर नौकाओं के समान हैं। जो अज्ञानी इन्हें ही परम श्रेय मान लेते हैं, वे बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में गिरते हविजय
सच्चा ब्रह्म ज्ञान मनुष्य को किसी कर्मकांड से नहीं, बल्कि स्व-विवेक और जाग्रत अवस्था से प्राप्त होता है।

अध्याय ४: आत्मा, जीव और परम ब्रह्म का तादात्म्य

१. 'तत्त्वमसि' — तू वही है

उपनिषदों का महावाक्य घोषित करता है कि जीव और ब्रह्म में कोई मौलिक भेद नहीं है। जैसे जल की एक बूँद और समुद्र का जल मूलतः एक ही हैं, वैसे ही आत्मा और ब्रह्म में अभेद संबंध है।

छांदोग्योपनिषद् (६.८.७): "स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।" (वह जो सूक्ष्म तत्त्व है, वही इस संपूर्ण जगत् की आत्मा है। वही सत्य है, वही आत्मा है, और हे श्वेतकेतु! वह तू ही है।)

"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।"
(वह जो सूक्ष्म तत्त्व है, वही इस संपूर्ण जगत् की आत्मा है। वही सत्य है, वही आत्मा है, और हे श्वेतकेतु! वह तू ही है।)
२. आत्म-साक्षात्कार ही ब्रह्म ज्ञान है
ईश्वर को बाहर खोजना अज्ञान है; उसे अपने भीतर जाग्रत चेतना के रूप में पहचानना ही

ज्ञान है।
सुफ़ी संत रूमी का कथन: "आप महासागर में एक बूँद नहीं हैं। आप एक बूँद में पूरा महासागर हैं।"

"आप महासागर में एक बूँद नहीं हैं। आप एक बूँद में पूरा महासागर हैं।"

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १०, श्लोक २०): "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:।" (हे अर्जुन! मैं समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ।)

"अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:।"
(हे अर्जुन! मैं समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ।)

अध्याय ५: निष्काम कर्म और विवेक-युक्त जीवन

१. कर्मयोग — संसार से भागना नहीं, सजग रहना

ब्रह्म ज्ञान संसार का त्याग करने या जंगलों में भाग जाने का नाम नहीं है। संसार में रहते हुए, प्रत्येक कर्तव्य को जाग्रत चेतना और आसक्ति-रहित होकर करना ही सच्चा कर्मयोग है।
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २, श्लोक ४८): "योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।" (आसक्ति का त्याग करके तथा सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखकर योग में स्थित होकर कर्म करो।)

"योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।"
(आसक्ति का त्याग करके तथा सिद्धि और असिद्धि में समभाव रखकर योग में स्थित होकर कर्म करो।)

२. जाग्रत जीवन ही मुक्ति है

जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक श्वास और प्रत्येक कार्य जब सजगता के साथ घटित होता है, तो वही समाधि का रूप ले लेता है। बाह्य दिखावे की जगह आंतरिक सत्य ही मनुष्य को समस्त बंधनों से मुक्त करता है।

अध्याय ६: सत्य की शाश्वत विजय

सत्य कभी पराजित नहीं होता। अंधकार चाहे कितना भी गहरा और प्राचीन क्यों न हो,

ज्ञान रूपी एक छोटी सी किरण उसे तत्काल नष्ट कर देती है।
बृहदारण्यकोपनिषद् (१.३.२८): "असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥" (मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।)

"असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥"
(मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।)

सत्य की पहचान: सत्य निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी है।

पाखंड का त्याग: बाह्य कर्मकांड, भय और लालच पर आधारित धर्म से मुक्ति।

वास्तविक समाधि: जागृत अवस्था में किया गया ध्यान ही वास्तविक समाधि है।

आत्म-साक्षात्कार: अपने भीतर की चेतना को ही ब्रह्म रूप में पहचानना।

सत्य किसी देश, काल, जाति, संप्रदाय या धर्म विशेष की बपौती नहीं है। सत्य वह शाश्वत, स्वयं-प्रकाशित ज्योति है जो अज्ञान के गहनतम अंधकार को भेदने का सामर्थ्य रखती है।

आज जब मानव समाज बाह्य आडंबरों, दिखावटी पूजा-पाठ, भय और लालच पर आधारित मान्यताओं के जाल में उलझकर वास्तविक अध्यात्म से दूर हो गया है, तब विवेक रूपी दीप जलाने की परम आवश्यकता है।

यह ग्रन्थ 'ब्रह्म ज्ञान' किसी नवीन मत या संप्रदाय की स्थापना का प्रयास नहीं है, अपितु यह उन समस्त अंधविश्वासों और पाखंडों पर सत्य का प्रहार है जिन्होंने ईश्वर, आत्मा और धर्म के वास्तविक स्वरूप को आच्छादित कर रखा है। इसका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य को शब्द-जाल और अंधविश्वास से निकालकर परम सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन कराना है।

ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप — भ्रम बनाम सत्य

१. बाह्य आडंबर और वास्तविक समाधि

अधिकांश संसार बाह्य क्रियाकांडों, भस्म धारण करने, विशेष वेशभूषा और हठयोग की क्रियाओं को ही अध्यात्म मान बैठा है। यह अज्ञान का चरम रूप है। केवल आँखें मूँदकर बैठ जाना या संसार से भाग जाना ध्यान नहीं है।

"जागृत अवस्था में किया गया ध्यान ही वास्तविक समाधि है।"

जब चेतना अपनी संपूर्ण सजगता में, जीवन के प्रत्येक क्षण में और हर कर्म में जाग्रत रहती है, वही ब्रह्म का सच्चा सानिध्य है। सोई हुई या भ्रमित चेतना ही अज्ञान है, और पूर्णतः जाग्रत चेतना ही 'ब्रह्म' है।

२. सर्वव्यापी ब्रह्म

धर्मग्रंथों का स्पष्ट मत है कि ब्रह्म निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी है। अज्ञानता के कारण मनुष्य ने उसे सीमाओं, मूर्तियों और कर्मकांडीय अनुष्ठानों तक सीमित कर दिया है।

ऋग्वेद (१.१६४.४६): *"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक ही है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।)*

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"
(सत्य एक ही है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।)

ईशावास्योपनिषद् (मंत्र १): *"ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।" (इस जगत् में जो कुछ भी स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है।)*

"ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।"
(इस जगत् में जो कुछ भी स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है।)
जब परम तत्त्व कण-कण में विद्यमान है, तो किसी मध्यस्थ, ठेकेदार या पाखंडी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता केवल अपने भीतर छिपे अज्ञान के आवरण को हटाने की है।

पाखंड का उच्छेद और विवेक की जागृति

१. अंधकार और असत्य की पहचान

सत्य के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक पाखंड है। जब अध्यात्म का स्थान भय, व्यापार और अंधविश्वास ले लेते हैं, तब धर्म का पतन हो जाता है। कठोपनिषद् में ऐसे अज्ञानी और ढोंगी मार्गदर्शकों के विषय में स्पष्ट चेतावनी दी गई है:

कठोपनिषद् (१.२.५): *"अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।" (अविद्या के भीतर रहते हुए भी स्वयं को ज्ञानी और पंडित मानने वाले अज्ञानी लोग उसी प्रकार भटकते हैं, जैसे अंधों द्वारा ले जाए जाने वाले अंधे।)*

"अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।"
(अविद्या के भीतर रहते हुए भी स्वयं को ज्ञानी और पंडित मानने वाले अज्ञानी लोग उसी प्रकार भटकते हैं, जैसे अंधों द्वारा ले जाए जाने वाले अंधे।)

२. वैश्विक धार्मिक ग्रंथों में सत्य का संदेश

सत्य की कोई भौगोलिक या धार्मिक सीमा नहीं होती। संसार के समस्त प्रामाणिक ग्रंथों और विचारकों ने आंतरिक विवेक और सत्य को ही प्रमुखता दी है:

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २, श्लोक १६): "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" (असत्य वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत्य का कभी अभाव नहीं होता।)

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।"
(असत्य वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत्य का कभी अभाव नहीं होता।)

धम्मपद (बौद्ध दर्शन): "न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥" (घृणा से घृणा कभी शांत नहीं होती, प्रेम और सत्य से ही शांत होती है—यही सनातन नियम है।)

"न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं। अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥"
(घृणा से घृणा कभी शांत नहीं होती, प्रेम और सत्य से ही शांत होती है—यही सनातन नियम है।)

बाइबल (जॉन ८:३२): *"And you will know the truth, and the truth will set you free."* (और तुम सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा।)

"And you will know the truth, and the truth will set you free."
(और तुम सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा।)

अविद्या, माया और पाखंड का यथार्थ स्वरूप

१. अविद्या का स्वरूप और उसका निवारण

अज्ञान (अविद्या) केवल ज्ञान का न होना नहीं है, अपितु असत्य को सत्य, अनित्य को नित्य और दुःख को सुख मान लेना ही अविद्या है। संसार में फैले पाखंड का मुख्य कारण यही अविद्या है।

महर्षि पतंजलि (योगसूत्र २.५): "अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।" (अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना ही अविद्या है।)

"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।"
(अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना ही अविद्या है।)

जब तक मनुष्य अपनी चेतना को जाग्रत नहीं करता, वह बाह्य अनुष्ठानों, टोने-टोटकों

और ढोंगी गुरुओं के बहकावे में आकर अपनी ऊर्जा और समय नष्ट करता रहता है।

२. पाखंड और धार्मिक व्यवसाय का खंडन

धर्म का अर्थ है धारणा करना—सत्य, करुणा और विवेक को जीवन में उतारना। परंतु जब धर्म को भय और लालच का साधन बना दिया जाता है, तब वह पाखंड बन जाता है।

मुंडकोपनिषद् में ऐसे केवल कर्मकांड पर निर्भर रहने वाले ढोंग की तुलना फूटी हुई नौका से की गई है:

मुंडकोपनिषद् (१.२.७): "प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।" (ये यज्ञ और बाह्य कर्मकांड अत्यंत कमज़ोर नौकाओं के समान हैं। जो अज्ञानी इन्हें ही परम श्रेय मान लेते हैं, वे बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में गिरते हैं।)

"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।"

(ये यज्ञ और बाह्य कर्मकांड अत्यंत कमज़ोर नौकाओं के समान हैं। जो अज्ञानी इन्हें ही परम श्रेय मान लेते हैं, वे बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में गिरते हैं।)

सच्चा ब्रह्म ज्ञान मनुष्य को किसी कर्मकांड से नहीं, बल्कि स्व-विवेक और जाग्रत अवस्था से प्राप्त होता है।

आत्मा, जीव और परम ब्रह्म का तादात्म्य

१. 'तत्त्वमसि' — तू वही है

उपनिषदों का महावाक्य घोषित करता है कि जीव और ब्रह्म में कोई मौलिक भेद नहीं है। जैसे जल की एक बूँद और समुद्र का जल मूलतः एक ही हैं, वैसे ही आत्मा और ब्रह्म में अभेद संबंध है।

छांदोग्योपनिषद् (६.८.७): "स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।" (वह जो सूक्ष्म तत्त्व है, वही इस संपूर्ण जगत् की आत्मा है। वही सत्य है, वही आत्मा है, और हे श्वेतकेतु! वह तू ही है।)

"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।"

(वह जो सूक्ष्म तत्त्व है, वही इस संपूर्ण जगत् की आत्मा है। वही सत्य है, वही आत्मा है, और हे श्वेतकेतु! वह तू ही है।)

२. आत्म-साक्षात्कार ही ब्रह्म ज्ञान है

ईश्वर को बाहर खोजना अज्ञान है; उसे अपने भीतर जाग्रत चेतना के रूप में पहचानना ही ज्ञान है।

सुफ़ी संत रूमी का कथन: "आप महासागर में एक बूँद नहीं हैं। आप एक बूँद में पूरा महासागर हैं।"

- "आप महासागर में एक बूँद नहीं हैं। आप एक बूँद में पूरा महासागर हैं।"
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १०, श्लोक २०): "अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।" (हे अर्जुन! मैं समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ।)

आत्मा हूँ।)
ोग

यम नहीं है, बल्कि यह कार्य-कारण का वैज्ञानिक और प्राकृतिक नियम है। मनुष्य जैसा बीज बोता है, , दान या पाखंड व्यक्ति को उसके गलत कर्मों के परिणाम से नहीं बचा सकता।

ौर गहन है।)

को जाग्रत चेतना और आसक्ति-रहित होकर करना ही सच्चा कर्मयोग है।

रखकर योग में स्थित होकर कर्म करो।"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।"

आधुनिक क्वांटम भौतिकी (Quantum Physics) भी इस निष्कर्ष पर पहुँच रही है कि संपूर्ण ब्रह्मांड एक ही ऊर्जा (Energy) और चेतना (Cosmic Consciousness) का प्रसार है। जिस सत्य को उपनिषदों ने 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहा, विज्ञान उसे पदार्थों का अंतर्संबंध (Interconnectedness of Reality) कह रहा है।

अल्बर्ट आइंस्टीन का कथन: "ज्ञान के बिना धर्म अंधा है, और धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है।"

"ज्ञान के बिना धर्म अंधा है, और धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है।"
२. अंधविश्वास पर विज्ञान और विवेक का प्रहार
ब्रह्म ज्ञान अंधविश्वास का खंडन तर्क, विवेक और वैज्ञानिक सोच के आधार पर करता है। जब मनुष्य तर्कसंगत सोच अपनाता है, तो ढोंगियों का व्यापार स्वतः समाप्त हो जाता

है।

अध्याय ७: भक्ति और ज्ञान का सुंदर समन्वय

१. अंध-भक्ति बनाम विवेकयुक्त भक्ति

केवल भ्रामक कथाओं, भय और किसी व्यक्तित्व के अंधानुकरण को भक्ति नहीं कहा जा सकता। सच्ची भक्ति ज्ञान पर आधारित होती है, जहाँ भक्त और भगवान में भेद समाप्त होकर केवल प्रेम और एकरूपता शेष रह जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ७, श्लोक १७): "तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।" *(उन सबमें नित्य-निरंतर मुझमें स्थित एकनिष्ठ भक्ति वाला ज्ञानी श्रेष्ठ है।)*

"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।"
(उन सबमें नित्य-निरंतर मुझमें स्थित एकनिष्ठ भक्ति वाला ज्ञानी श्रेष्ठ है।)

२. प्रेम ही ब्रह्म का साकार रूप है

जब ज्ञान परिपक्व होता है, तो वह सर्वत्र करुणा और प्रेम बनकर बहता है। प्राणिमात्र के प्रति प्रेम ही ज्ञान की वास्तविक कसौटी है।

अध्याय ८: — सत्य की शाश्वत विजय और जाग्रत जीवन

सत्य कभी पराजित नहीं होता। अंधकार चाहे कितना भी गहरा और प्राचीन क्यों न हो, ज्ञान रूपी एक छोटी सी किरण उसे तत्काल नष्ट कर देती है।

जब मनुष्य अंधकार और पाखंड को छोड़कर स्वयं के जाग्रत स्वरूप में स्थित हो जाता है, तभी वह जीवन-मुक्त होकर निर्भयता प्राप्त करता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् (१.३.२८): "असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥" *(मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।)*

"असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥"
(मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।)

सत्य की पहचान: सत्य निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी है।

पाखंड का त्याग: बाह्य कर्मकांड, भय और लालच पर आधारित धर्म से मुक्ति।

वास्तविक समाधि: जागृत अवस्था में किया गया ध्यान ही वास्तविक समाधि है।

आत्म-साक्षात्कार: अपने भीतर की चेतना को ही ब्रह्म रूप में पहचानना।

वैज्ञानिक व विवेकपूर्ण जीवन: तर्क, कर्म-फल और करुणा पर आधारित जाग्रत जीवन शैली।

मन का निग्रह, साक्षी भाव और ध्यान

१. मन की चंचलता और साक्षी चेतना

मन विचारों का सतत प्रवाह है। जब मनुष्य विचारों के साथ तादात्म्य (Identification) स्थापित कर लेता है, तो वह सुखी-दुःखी होता है। परंतु जब वह मन का द्रष्टा (Witness/Observer) बन जाता है, तब वह अपनी शांत ब्रह्म-स्थिति को पहचानता है

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ६, श्लोक ६): "बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः।" (जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, उसके लिए मन सबसे बड़ा मित्र है, और जो ऐसा नहीं कर पाता, उसके लिए मन ही सबसे बड़ा शत्रु है।)

"बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः।"
(जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, उसके लिए मन सबसे बड़ा मित्र है, और जो ऐसा नहीं कर पाता, उसके लिए मन ही सबसे बड़ा शत्रु है।
ध्यान का व्यावहारिक अर्थ
ध्यान किसी एक वस्तु पर ज़बरदस्ती ध्यान केंद्रित करना नहीं, बल्कि हर कार्य को पूर्ण जागरूकता के साथ करना है। खाते, चलते, बोलते समय जब व्यक्ति अपनी चेतना में रहता है, तो वही सच्चा ध्यान बन जाता है।

अध्याय ९: सामाजिक कुरीतियाँ, जातिगत पाखंड और सर्व-समभाव

१. ब्रह्म ज्ञान में जाति और वर्ण का खंडन

पाखंडी व्यवस्था ने समाज को उच्च-नीच और जाति-पात में बाँट दिया है। परंतु ब्रह्म ज्ञान की दृष्टि में सभी जीवों में एक ही चेतना विद्यमान है।
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ५, श्लोक १८): "विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥" *(ज्ञानी पुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी एक समान ब्रह्म-सत्ता को ही देखते हैं।)*

"विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥" *(ज्ञानी पुरुष विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी एक समान ब्रह्म-सत्ता को ही देखते हैं।)*

२. मानवता ही सच्चा धर्म

जब तक मनुष्य मानव-मानव के बीच भेद करता है, वह ब्रह्म ज्ञान से कोसों दूर है। प्राणीमात्र के प्रति करुणा और समानता ही अध्यात्म का वास्तविक मापदंड है।

अध्याय १०: जीवन-मुक्ति और निर्भयता का मार्ग

१. भय से मुक्ति ही ज्ञान की अंतिम कसौटी है

पाखंड का पूरा आधार 'भय' (मृत्यु का भय, पाप का भय, नरक का भय) है। सच्चा ब्रह्म ज्ञान मनुष्य को निर्भय बनाता है, क्योंकि आत्मा अजर-अमर और अछूती है।

बृहदारण्यकोपनिषद् **(४.२.४):** "अभयं वै जनक प्राप्तोसीति" *(महर्षि याज्ञवल्क्य राजा जनक से कहते हैं—हे जनक! तुमने अभय (निर्भयता) की अवस्था प्राप्त कर ली है।)*"अभयं वै जनक प्राप्तोसीति"

(महर्षि याज्ञवल्क्य राजा जनक से कहते हैं—हे जनक! तुमने अभय (निर्भयता) की अवस्था प्राप्त कर ली है।)

२. जीवन-मुक्त अवस्था

जीते जी अज्ञान, मोह और पाखंड से मुक्त हो जाना ही 'जीवन-मुक्ति' है। ऐसे ज्ञानी पुरुष के लिए पूरा विश्व ही कुटुंब बन जाता है (वसुधैव कुटुंबकम्)।

अध्याय ११: — सत्य की शाश्वत विजय

सत्य कभी पराजित नहीं होता। अंधकार चाहे कितना भी गहरा और प्राचीन क्यों न हो, ज्ञान रूपी एक छोटी सी किरण उसे तत्काल नष्ट कर देती है।

जब मनुष्य बाह्य आडंबरों और पाखंड को छोड़कर स्वयं के जाग्रत स्वरूप में स्थित हो जाता है, तभी वह वास्तविक समाधि और अखंड शांति को प्राप्त करता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् **(१.३.२८):** "असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥" *(मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।)*

"असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥"
(मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।)

अध्याय १२: व्यावहारिक जीवन में ब्रह्म ज्ञान — विवेक और आचरण

१. ज्ञान का आचरण में रूपांतरण

केवल शास्त्रों के श्लोक याद कर लेना या दार्शनिक बातें करना ब्रह्म ज्ञान नहीं है। जब तक ज्ञान व्यक्ति के स्वभाव, वाणी और आचरण में प्रकट नहीं होता, तब तक वह केवल बौद्धिक भार है।

पंचदशी ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान की सार्थकता मन की शांति और राग-द्वेष के विनाश में है:

पंचदशी (तृतीय परिच्छेद): "अद्वैते विश्रान्तिः एव फलम्।" (अद्वैत यानी अभेद भाव में विश्राम पाना और शांति अनुभव करना ही ज्ञान का वास्तविक फल है।)

"अद्वैते विश्रान्तिः एव फलम्।"
(अद्वैत यानी अभेद भाव में विश्राम पाना और शांति अनुभव करना ही ज्ञान का वास्तविक फल है।)

२. सजगता ही साधना है

साधारण जीवन की दैनिक गतिविधियों—चलना, बोलना, काम करना, दूसरों से व्यवहार करना—में सजग बने रहना ही व्यावहारिक अध्यात्म है। जब व्यक्ति जागृत अवस्था में रहकर कर्म करता है, तो उससे कोई अनैतिक, पाखंडपूर्ण या स्वार्थी कार्य घटित ही नहीं हो सकता।

अध्याय १३: गुरु-तत्त्व की सत्यता बनाम 'गुरु-डोम' (पाखंडी गुरु)

१. सच्चा गुरु कौन है?

आज अध्यात्म के नाम पर 'व्यक्ति-पूजा' (Personality Cult) और गुरु-डोम का व्यापार चरम पर है। लोग किसी मनुष्य की वेशभूषा, दावों और चमत्कारों के पीछे भागकर अपना शोषण करवाते हैं।

मुंडकोपनिषद् में सच्चे गुरु के केवल दो ही लक्षण बताए गए हैं:

मुंडकोपनिषद् (१.२.१२): "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं

ब्रह्मनिष्ठम्॥" *(सत्य को जानने के लिए साधक को ऐसे गुरु के पास जाना चाहिए जो 'श्रोत्रिय' (वेदों/शाश्वत सत्यों का मर्म जानने वाला) हो और 'ब्रह्मनिष्ठ' (जिसकी स्वयं ब्रह्म में स्थिति हो, जो स्वयं सत्य में जीता हो)।)*

"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥"
(सत्य को जानने के लिए साधक को ऐसे गुरु के पास जाना चाहिए जो 'श्रोत्रिय' (वेदों/शाश्वत सत्यों का मर्म जानने वाला) हो और 'ब्रह्मनिष्ठ' (जिसकी स्वयं ब्रह्म में स्थिति हो, जो स्वयं सत्य में जीता हो)।)
सच्चा गुरु शिष्य को कभी अपने से बाँधता नहीं, न ही भय दिखाता है। वह शिष्य को आत्म-निर्भर बनाता है और उसका ध्यान अपने शरीर से हटाकर उसके स्वयं के भीतर स्थित ब्रह्म-तत्त्व की ओर मोड़ता है।
२. चमत्कारों और टोने-टोटकों का खंडन
चमत्कार दिखाकर भीड़ जुटाना और सिद्धियों का प्रदर्शन करना अहंकार का प्रतीक है, ब्रह्म ज्ञान का नहीं। संत कबीर ने ऐसे पाखंडी गुरुओं पर तीखा प्रहार किया था:
"गुरु अंधा चेला अंधा, दोनों धक्के खाय।"
ब्रह्म ज्ञान यह स्पष्ट करता है कि प्रकृति के नियम अटल हैं। कार्य-कारण के नियम को तोड़कर चमत्कार का दावा करना अज्ञानी समाज को ठगने की कला मात्र है।

अध्याय १४: अहंकार, वासना और मुक्ति का मार्ग

१. 'मैं' भाव (अहंकार) का विश्लेषण
अज्ञान का मूल केंद्र 'अहंकार' है—यह मानना कि "मैं यह शरीर हूँ, मैं यह नाम हूँ, मैं यह पद हूँ।" जब तक यह संकीर्ण 'मैं' बना रहता है, तब तक अद्वैत (एकता) का अनुभव नहीं हो सकता।
अष्टावक्र गीता (अध्याय १, श्लोक ४): "यदि देहं पृथक्कृत्य चित्ति विश्राम्य तिष्ठसि। अधुना एव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि॥" *(यदि तुम स्वयं को इस शरीर से पृथक् करके अपनी चैतन्य सत्ता में विश्राम करो, तो तुम इसी क्षण सुखी, शांत और बंधनों से मुक्त हो जाओगे।)*

"यदि देहं पृथक्कृत्य चित्ति विश्राम्य तिष्ठसि। अधुना एव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि॥"
(यदि तुम स्वयं को इस शरीर से पृथक् करके अपनी चैतन्य सत्ता में विश्राम करो, तो तुम इसी क्षण सुखी, शांत और बंधनों से मुक्त हो जाओगे।)
२. वासनाओं का क्षय और वास्तविक संन्यास
संन्यास का अर्थ वस्त्र बदलना या घर-परिवार छोड़कर भाग जाना नहीं है। संन्यास मन

की एक आंतरिक अवस्था है, जहाँ से तृष्णा और वासना समाप्त हो जाती हैं। जब व्यक्ति संसार की नश्वरता को समझ लेता है, तो उसमें स्वतः ही विवेक और वैराग्य का उदय होता है।

अध्याय १५: मृत्यु का रहस्य और अमर आत्म-तत्त्व

१. मृत्यु केवल शरीर का रूपांतरण है

पाखंडी व्यवस्था का सबसे बड़ा हथियार 'मृत्यु का भय' है। ब्रह्म ज्ञानी जानता है कि मृत्यु केवल वस्त्र बदलने के समान है। आत्मा न तो कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २, श्लोक २३): *"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥" (इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल भिगो सकता है और न वायु सुखा सकती है।)*

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥" (इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल भिगो सकता है और न वायु सुखा सकती है।)

२. अभय पद की प्राप्ति

जब व्यक्ति यह साक्षात्कार कर लेता है कि उसकी वास्तविक सत्ता शरीर नहीं अपितु अमर चेतना है, तो मृत्यु का सारा भय सदा के लिए समाप्त हो जाता है। यही वास्तविक मुक्ति है।

अध्याय १६: योग, ध्यान और आधुनिक मनोविज्ञान का संजाल

१. मन का विज्ञान: उपनिषद और आधुनिक मनोविज्ञान

आधुनिक मनोविज्ञान (Modern Psychology) विशेष रूप से सिगमंड फ्रायड और कार्ल जुंग के अध्ययन मन की परतों (चेतन, अवचेतन और अचेतन) तक ही सीमित रहे। परंतु भारतीय योग शास्त्र और वेदांत मन की इन सीमाओं के पार 'तुरीय' यानी शुद्ध साक्ष्य चेतना का स्पष्ट वर्णन करते हैं।

मांडूक्योपनिषद् (मंत्र ७): *"नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥" (वह न अंतःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है, न अज्ञान है। वह अदृश्य, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अचिंत्य और अनिर्वचनीय है। वही शांत, कल्याणकारी और अद्वैत 'तुरीय' (चौथी अवस्था) है, वही जानने योग्य वास्तविक आत्मा है।)*

"नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।
अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥"
*(*वह न अंतःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है, न अज्ञान है। वह अदृश्य, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अचिंत्य और अनिर्वचनीय है। वही शांत, कल्याणकारी और अद्वैत 'तुरीय' *(*चौथी अवस्था*)* है, वही जानने योग्य वास्तविक आत्मा है।*)*

जब आधुनिक मनोविज्ञान केवल मन के विकारों को ठीक करने का प्रयास करता है, तब ब्रह्म ज्ञान मन से परे उठकर स्वयं को साक्षी रूप में स्थापित करने की कला सिखाता है।

२. हठयोग बनाम ध्यानयोग **(**साक्षी भाव**)**

आज योग को केवल शारीरिक कसरतों, आसनों और सांस लेने के अभ्यासों तक सीमित कर दिया गया है। बाह्य क्रियाओं से शरीर स्वस्थ हो सकता है, परंतु जब तक मन का साक्षी भाव जाग्रत नहीं होता, तब तक ब्रह्म ज्ञान असंभव है।

महर्षि पतंजलि **(**योगसूत्र १.२**):** *"*योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।*"* *(*चित्त की वृत्तियों *(*विचारों के प्रवाह*)* का शांत हो जाना ही वास्तविक योग है।*)*

*"*योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।*"*
*(*चित्त की वृत्तियों *(*विचारों के प्रवाह*)* का शांत हो जाना ही वास्तविक योग है।*)*

असली साधना शरीर को कष्ट देना या विचित्र मुद्राएँ बनाना नहीं, बल्कि उठते-बैठते, खाते-पीते और हर क्षण अपने विचारों और भावनाओं को बिना किसी राग-द्वेष के देखना है।

अध्याय १७: वैश्विक दर्शन में ब्रह्म ज्ञान की गूँज

सत्य किसी एक धर्म, देश या संस्कृति की सीमा में आबद्ध नहीं है। दुनिया के हर कोने में जब-जब विचारकों ने आत्म-साक्षात्कार किया, उन्होंने इसी अद्वैत और सर्वव्यापी सत्य की घोषणा की।

१. सुकरात और प्लेटो का ग्रीक दर्शन

प्राचीन यूनान के महान दार्शनिक सुकरात ने कहा था: **"Know Thyself" (**स्वयं को जानो**)**। उनका यह कथन उपनिषदों के 'आत्मानं विद्धि' का ही प्रतिध्वनि है।

सुकरात के शिष्य प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध 'गुफा की उपमा' (Allegory of the Cave) में बताया कि संसार के भौतिक पदार्थ केवल परछाइयाँ (भ्रम/माया) हैं, और वास्तविक सत्य उस प्रकाश (ब्रह्म) में है जो इन परछाइयों को निर्मित करता है।

२. स्पिनोजा का अद्वैतवाद **(Spinoza's Pantheism)**

१७वीं शताब्दी के पश्चिमी दार्शनिक बारुक स्पिनोजा ने तर्क दिया कि ईश्वर और

प्रकृति/संसार दो अलग-अलग सत्ताएँ नहीं हैं। ईश्वर ही संपूर्ण ब्रह्मांड के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

स्पिनोजा का सिद्धांत: *"Deus sive Natura" (*ईश्वर ही प्रकृति है, और प्रकृति ही ईश्वर है*.)"Deus sive Natura" (*ईश्वर ही प्रकृति है, और प्रकृति ही ईश्वर है।*)*
यह उपनिषदों के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ ब्रह्म ही है) का ही पाश्चात्य प्रामाणिक निरूपण है।

३. ताओवाद और चीनी दर्शन

चीन के महान संत लाओत्सु (Lao Tzu) ने 'ताओ ते चिंग' में जिस 'ताओ' (The Way) का वर्णन किया है, वह निर्गुण ब्रह्म का ही रूप है:
*"*जिस ताओ का शब्दों में वर्णन किया जा सकता है, वह शाश्वत ताओ नहीं है।*"*
यह केनोपनिषद् के इस कथन से पूर्णतः मेल खाता है:

केनोपनिषद् (१.५): *"*यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥*" (*जो वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, बल्कि जिसके द्वारा वाणी व्यक्त होती है—उसी को तुम ब्रह्म जानो।*)*

*"*यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥*"*
*(*जो वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, बल्कि जिसके द्वारा वाणी व्यक्त होती है—उसी को तुम ब्रह्म जानो।*)*

अध्याय १८: ब्रह्म ज्ञान का भावी स्वरूप और मानव चेतना का विकास

१. अंधविश्वास और रूढ़ियों का अंत

आने वाला युग बाह्य आडंबरों, संकीर्ण रूढ़ियों और भय पर आधारित धर्म का युग नहीं होगा। जैसे-जैसे मानव चेतना का विकास हो रहा है, लोग पाखंडी व्यवस्थाओं पर सवाल उठा रहे हैं। भविष्य का धर्म तर्क, विवेक, करुणा और आत्म-साक्षात्कार पर टिका होगा।

२. एक अखंड मानव समाज (वसुधैव कुटुंबकम्)

जब मनुष्य यह समझ लेता है कि हर जीव के भीतर वही एक चेतना प्रवाहित हो रही है, तो जाति, धर्म, नस्ल और देश के नाम पर होने वाले भेद-भाव और युद्ध स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

महोपनिषद् (६.७१): "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥" (यह मेरा है और यह पराया है—ऐसी सोच संकीर्ण बुद्धि वालों की होती है। उदार हृदय वालों के लिए तो संपूर्ण पृथ्वी ही एक परिवार है।)

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥" (यह मेरा है और यह पराया है—ऐसी सोच संकीर्ण बुद्धि वालों की होती है। उदार हृदय वालों के लिए तो संपूर्ण पृथ्वी ही एक परिवार है।)

अध्याय १९: — सत्य का साक्षात्कार और अखंड जीवन

सत्य को कहीं दूर से खोजकर नहीं लाना है; वह आपके भीतर हमेशा से विद्यमान है। अज्ञान का अंधकार हटते ही सत्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है।

जागृत अवस्था में जिया गया जीवन ही ईश्वर की सच्ची पूजा है। जब मनुष्य भय, लालच, पाखंड और अहंकार से मुक्त होकर हर क्षण सजगता से जीता है, तभी वह वास्तव में ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करता है।

अध्याय २०: साधक का व्यावहारिक जीवन — दैनिक आचरण और आत्म-साधना

१. दिनचर्या से चिन्मयचर्या की ओर

सच्चा ब्रह्म ज्ञानी केवल अध्यात्म की बातें नहीं करता, बल्कि उसका पूरा जीवन ही साधना बन जाता है। प्रभात से लेकर रात्रि-शयन तक जीवन का हर एक कर्म सजगता की कसौटी पर कसा होना चाहिए।

- जागृति का पहला क्षण: प्रातःकाल आँख खुलते ही विचारों के जाल में उलझने से पूर्व स्वयं के अस्तित्व और 'होने मात्र' के भाव (I AM Presence) का अहसास करना ही सच्चा मंगलाचरण है।
- कर्तव्य का पालन: अपने परिवार, समाज और कार्यक्षेत्र के प्रति जिम्मेदारियों को बिना किसी फल की लिप्सा और बिना किसी शिकायत (Resentment) के निभाना।
- आहार और विचार की शुद्धि:

छान्दोग्योपनिषद् (७.२६.२): "आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।" (आहार की शुद्धि से अंतःकरण (सत्त्व) शुद्ध होता है, और अंतःकरण शुद्ध होने से स्वरूप की स्मृति अटल बनी रहती है।)

- "आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।"
  (आहार की शुद्धि से अंतःकरण (सत्त्व) शुद्ध होता है, और अंतःकरण शुद्ध होने से स्वरूप की स्मृति अटल बनी रहती है।)
  २. पाखंड से बचने के पाँच व्यावहारिक नियम

किसी के भय या लालच में न आना: यदि कोई धर्मगुरु या ज्योतिषी आपको किसी भावी विपत्ति का भय दिखाकर कर्मकांड या धन का अनुष्ठान करने को कहे, तो याद रखें कि ब्रह्म के निर्भय साम्राज्य में भय का कोई स्थान नहीं है।

सत्य की कसौटी पर कसना: किसी भी बात को केवल इसलिए स्वीकार न करें क्योंकि वह पुरानी है या किसी बड़े मंच से कही गई है। उसे स्वयं के विवेक, तर्क और प्राणिमात्र के प्रति करुणा की कसौटी पर कसें।

मध्यस्थों का अस्वीकार: ईश्वर और आपके बीच किसी पंडित, बाबा या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। आपकी अपनी जाग्रत चेतना ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष रूप है।

अंध-अनुकरण से मुक्ति: किसी वेशभूषा, तिलक, भस्म या बाहरी प्रतीकों को अध्यात्म की कसौटी न समझें।

स्व-उत्तरदायित्व: अपने कर्मों का दोष किसी ग्रह, नक्षत्र या दूसरों पर न मढ़ें। अपने जीवन और चेतना के स्वामी स्वयं बनें।

- अध्याय २१: अंतर्यात्रा का सर्वोत्कृष्ट सार — आत्म-बोध
  १. ज्ञान का अंतिम निष्कर्ष
  समस्त वेदों, उपनिषदों, गीता, बौद्ध दर्शन, सूफ़ी मत और विश्व के महान विचारकों का अंतिम निष्कर्ष केवल एक ही है:
  अहं ब्रह्मास्मि (मैं वही परम चैतन्य हूँ।)तत्त्वमसि (हे साधक! तू भी वही है।)सर्वं खल्विदं ब्रह्म (यह सब कुछ ब्रह्म ही है।)

संसार में कोई भेद नहीं है। भेद केवल हमारी अविद्या और मन की संकीर्णता में है। जब यह अज्ञान छँट जाता है, तो सर्वत्र केवल एक ही परम प्रकाश, एक ही अनकहा आनंद और एक ही शाश्वत सत्य शेष रह जाता है।
"न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुः न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।

एकानेकशेषः शिवः केवलोऽहम्॥"
(मैं न पृथ्वी हूँ, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश, न ही इंद्रियाँ। इन सबसे परे जो केवल एक विशुद्ध चैतन्य और कल्याणकारी तत्त्व शेष रहता है, वही 'मैं' हूँ।)

अध्याय २२: शंका-समाधान एवं आधुनिक तर्कशास्त्र (प्रश्न-उत्तर श्रृंखला)

इस अध्याय में आधुनिक मानव, युवा पीढ़ी और बुद्धिजीवियों के मन में उठने वाले व्यावहारिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रश्नों का अत्यंत तार्किक, निडर और प्रामाणिक उत्तर प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्न १: यदि ईश्वर कण-कण में और सर्वव्यापी है, तो हमें मूर्तियों, मंदिरों और विशेष कर्मकांडों की आवश्यकता क्यों बताई जाती है?

उत्तर:

सर्वव्यापी का अर्थ ही यह है कि वह किसी एक स्थान, रूप या संरचना तक सीमित नहीं हो सकता।

मूर्तियाँ या प्रतीक शुरुआत में केवल मन को एकाग्र करने के आलंबन *(Focusing Tools)* हो सकते थे, परंतु पाखंडी व्यवस्था ने आलंबन को ही मंजिल बना दिया। जब मनुष्य प्रतीक को ही संपूर्ण ईश्वर मान बैठता है और उसके नाम पर बलि, अनुष्ठान या आडंबर करता है, तो वह 'अविद्या' में गिर जाता है।

कठोपनिषद् (२.१.११): "मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥" (यह परम सत्य केवल शुद्ध मन से ही जाना जा सकता है; यहाँ ईश्वर में कोई विविधता या भेद नहीं है। जो यहाँ भेद देखता है, वह बार-बार मृत्यु और अज्ञान के चक्र में गिरता है।)

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥"
(यह परम सत्य केवल शुद्ध मन से ही जाना जा सकता है; यहाँ ईश्वर में कोई विविधता या भेद नहीं है। जो यहाँ भेद देखता है, वह बार-बार मृत्यु और अज्ञान के चक्र में गिरता है।)
तार्किक निष्कर्ष: जैसे हवा हर जगह मौजूद है और उसे महसूस करने के लिए पंखे की नहीं, केवल सजगता की आवश्यकता है; वैसे ही ब्रह्म सर्वव्यापी है। बाह्य कर्मकांडों के व्यापार से मुक्त होकर आंतरिक चेतना को जाग्रत करना ही सच्चा पूजन है।
प्रश्न २: विज्ञान कहता है कि ब्रह्मांड भौतिक कणों ***(Atoms/Subatomic Particles)*** और भौतिक नियमों से चलता है। फिर 'चेतना' या 'ब्रह्म' की क्या भूमिका है?

उत्तर*:*

आधुनिक क्वांटम फिजिक्स *(Quantum Physics)* ने स्वयं पदार्थ *(Matter)* के अस्तित्व के भ्रम को तोड़ दिया है। जब वैज्ञानिकों ने परमाणु के भीतर झाँका, तो उन्हें कोई ठोस पदार्थ नहीं मिला—केवल ऊर्जा के तरंग *(Energy Waves)* और संभावनाएँ *(Probabilities)* मिलीं।

क्वांटम भौतिकी का प्रसिद्ध ***"***ऑब्जर्वर इफेक्ट***" (Observer Effect)*** सिद्ध करता है कि दृष्टा *(Observer/Consciousness)* के बिना दृश्य *(Observed Reality)* का कोई निश्चित स्वरूप संभव नहीं है।

भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता इरविन श्रोडिंगर ***(Erwin Schrödinger)*** का कथन*:*

*"*संपूर्ण ब्रह्मांड में चेतना केवल एक ही है। जिसे हम बहुलता *(Multiplicity)* कहते हैं, वह केवल एक ही चेतना का आभास है।*"*

*"*संपूर्ण ब्रह्मांड में चेतना केवल एक ही है। जिसे हम बहुलता *(Multiplicity)* कहते हैं, वह केवल एक ही चेतना का आभास है।*"*

तार्किक निष्कर्ष*:* विज्ञान जिस 'यूनिफाइड फील्ड' *(Unified Field)* या 'कॉस्मिक एनर्जी' की खोज कर रहा है, उपनिषदों ने उसी को 'चेतना' या 'ब्रह्म' कहा है। पदार्थ चेतना का ही एक रूप है, चेतना पदार्थ से पैदा नहीं हुई है।

प्रश्न ३*:* कई ढोंगी गुरु और ज्योतिषी ग्रहों की दशा*,* कालसर्प दोष या पितृदोष का भय दिखाकर महंगे अनुष्ठान करवाते हैं। क्या ग्रहों का मनुष्य के भाग्य पर ऐसा नियंत्रण होता है*?*

उत्तर*:*

यह अज्ञानी समाज का आर्थिक और मानसिक शोषण करने का सबसे बड़ा पाखंड है।

खगोलीय पिंड *(*ग्रह और तारे*)* पदार्थ के विशाल पुंज हैं जो गुरुत्वाकर्षण के वैज्ञानिक नियमों से चलते हैं। किसी लोहे, पत्थर या गैस के गोले *(*ग्रह*)* का आपके चरित्र, निर्णय या आध्यात्मिक यात्रा से ऐसा कोई शत्रुतापूर्ण संबंध नहीं है कि वह आपको नुकसान पहुँचाए और कुछ रुपए के कर्मकांड या अंगूठी पहनने से शांत हो जाए।

योगवासिष्ठ *(*उत्पत्ति प्रकरण*):* *"*दैवं न किञ्चिदपि सम्भवतीह लोके, पौरुषेणैव सर्वमवाप्यते।*"* *(*इस संसार में 'भाग्य' या 'दैव' नाम की कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है। मनुष्य अपने स्वयं के विवेकपूर्ण पुरुषार्थ *(*कर्म*)* से ही सब कुछ प्राप्त करता है।*)*

*"*दैवं न किञ्चिदपि सम्भवतीह लोके, पौरुषेणैव सर्वमवाप्यते।*"*
*(*इस संसार में 'भाग्य' या 'दैव' नाम की कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है। मनुष्य अपने स्वयं के विवेकपूर्ण पुरुषार्थ *(*कर्म*)* से ही सब कुछ प्राप्त करता है।*)*

तार्किक निष्कर्ष*:* आपका कर्म और आपकी चेतना ही आपका भाग्य निर्धारित करती है। ग्रहों के भय को छोड़कर निष्काम कर्म और पुरुषार्थ पर टिकना ही सच्चा ब्रह्म ज्ञान है।

प्रश्न ४*:* क्या ध्यान ***(Meditation)*** का अर्थ विचारों को जबरदस्ती रोकना या दिमाग को खाली

करना है*?*

उत्तर*:*

बिल्कुल नहीं। विचारों को ज़बरदस्ती रोकना मन से युद्ध करना है, जिससे मानसिक तनाव और विक्षेप *(Suppression)* पैदा होता है। मन का स्वभाव ही विचार पैदा करना है।

वास्तविक ध्यान 'विचार-निरोध' का प्रयास नहीं, बल्कि 'साक्षी भाव' *(Witnessing Consciousness)* है।

विचारों से लड़िए मत।

विचारों का समर्थन या विरोध मत कीजिए।

केवल एक दृष्टा/साक्षी की तरह शांत होकर उठते और गिरते विचारों को देखिए।

जैसे आकाश बादलों से अछूता रहता है, वैसे ही जब आप विचारों को केवल देखना शुरू करते हैं, तो विचार स्वतः शांत हो जाते हैं और अपनी शुद्ध चैतन्य स्थिति प्रकट हो जाती है।

प्रश्न ५*:* समाज में धर्म के नाम पर जातिगत भेदभाव और ऊँच-नीच की दीवारें खड़ी की गईं। क्या ब्रह्म ज्ञान इसे स्वीकार करता है*?*

उत्तर*:*दं

ब्रह्म ज्ञान जाति, वर्ण, लिंग या नस्ल के आधार पर किसी भी भेद को पूरी तरह से खारिज करता है। जातिवाद अज्ञान और सामाजिक शोषकों का गढ़ा हुआ पाखंड है।

जब ब्रह्म ज्ञान की मूल घोषणा ही यह है कि **"**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**"** *(*सब कुछ ब्रह्म ही है*)*, तो किसी एक मनुष्य को श्रेष्ठ और दूसरे को नीच मानना सीधे-सीधे ब्रह्म का अपमान और अज्ञान की पराकाष्ठा है।प

अष्टावक्र गीता *(*अध्याय १०*,* श्लोक ८*):* "विहाय कामं क्रोधं च लोभं मोहं च सर्वशः। चिन्मयोऽहमिति ज्ञात्वा सर्वात्मानं भजेत्सद॥" *(*काम, क्रोध, लोभ और मोह को पूरी तरह छोड़कर स्वयं को शुद्ध चैतन्य जानकर सभी जीवों को आत्मवत् मानकर प्रेम करें।*)*

"विहाय कामं क्रोधं च लोभं मोहं च सर्वशः। चिन्मयोऽहमिति ज्ञात्वा सर्वात्मानं भजेत्सद॥"
*(*काम, क्रोध, लोभ और मोह को पूरी तरह छोड़कर स्वयं को शुद्ध चैतन्य जानकर सभी जीवों को आत्मवत् मानकर प्रेम करें।*)*

प्रश्न ६*:* एक आधुनिक*,* काम-काजी व्यक्ति जो परिवार और नौकरी की जिम्मेदारियों में व्यस्त है*,* वह ब्रह्म ज्ञान को अपने जीवन में कैसे उतारे*?*

उत्तर*:*

ब्रह्म ज्ञान संसार से भागने, दाढ़ी बढ़ाने या कपड़े बदलने की माँग नहीं करता। यह केवल देखने के दृष्टिकोण ***(Perspective Change)*** को बदलने का नाम है।

कर्तव्य का भाव*:* अपने कार्य को 'मैं कर रहा हूँ' के अहंकार के बिना, समाज और परिवार की सेवा समझकर सर्वश्रेष्ठ तरीके से करें।

प्रतिक्रिया में सजगता*:* जब क्रोध, लोभ या तनाव आए, तो तुरंत प्रतिक्रिया देने के बजाय ५ सेकंड का विराम लें और अपने भीतर उठते भाव को साक्षी होकर देखें।

असंगता ***(Detachment):*** यह याद रखें कि जीवन की हर परिस्थिति *(*सुख या दुःख*)* परिवर्तनशील है, परंतु आप उस परिस्थिति को देखने वाले अचल साक्षी हैं।

प्रश्न ७: क्या मोक्ष या मुक्ति मरने के बाद किसी अन्य लोक (स्वर्ग/वैकुंठ) में मिलती है, या इसी जीवन में संभव है?

उत्तर:

मुक्ति किसी भौगोलिक स्थान (जैसे स्वर्ग, वैकुंठ या अन्य लोक) की यात्रा नहीं है, और न ही यह शरीर छूटने के बाद मिलने वाली कोई घटना है।

पाखंडी व्यवस्था ने मोक्ष को 'मृत्यु के बाद की वस्तु' बनाकर बेचा ताकि जीवित रहते हुए मनुष्य पर भय और लालच का नियंत्रण बना रहे। वेदों और उपनिषदों की स्पष्ट घोषणा है कि मोक्ष अज्ञान से मुक्ति का नाम है—और अज्ञान से मुक्ति इसी क्षण, इसी शरीर में संभव है। इसे ही **'जीवन्मुक्ति'** कहा गया है।

- कठोपनिषद् **(२.३.१४):** *"*यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥*"* *(*जब मनुष्य के हृदय में स्थित समस्त अज्ञानजन्य कामनाएँ और मोह नष्ट हो जाते हैं, तब यह मरणधर्म मनुष्य इसी जीवन में, इसी लोक में अमर होकर ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।*)*
- *"*यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥*"*

  *(*जब मनुष्य के हृदय में स्थित समस्त अज्ञानजन्य कामनाएँ और मोह नष्ट हो जाते हैं, तब यह मरणधर्म मनुष्य इसी जीवन में, इसी लोक में अमर होकर ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।*)*

  तार्किक निष्कर्ष**:**

  यदि कोई जीवित रहते हुए अपने अहंकार, पाखंड और भय से मुक्त नहीं हुआ, तो मृत्यु के बाद वह कैसे मुक्त हो सकता है? स्थान बदलने से चेतना नहीं बदलती। अज्ञान का अंत ही मोक्ष है, और वह 'अभी और यहीं' (Here and Now) जाग्रत होने में है।

प्रश्न ८: समाज में नास्तिकता **(Atheism)** और ईश्वरवाद **(Theism)** को लेकर गहरा विवाद है। ब्रह्म ज्ञान का इन दोनों दृष्टिकोणों पर क्या विचार है**?**

उत्तर**:**

ब्रह्म ज्ञान इन दोनों ही संकीर्ण सीमाओं से परे एक विशुद्ध अनुभूत्यात्मक (Empirical) सत्य है।

पारंपरिक ईश्वरवाद की सीमा**:** ज्यादातर ईश्वरवादी जिस 'ईश्वर' को मानते हैं, वह आसमान में बैठा कोई व्यक्ति (Personal God) है जो उनकी पूजा से प्रसन्न होता है और न पूजा करने पर क्रोधित होता है। यह ईश्वर मनुष्य की अपनी कल्पना और भय की उपज है। ब्रह्म ज्ञान ऐसे व्यक्तिवादी ईश्वर के अंधविश्वास का खंडन करता है।

नास्तिकता की सीमा**:** नास्तिक इस काल्पनिक, व्यक्तिवादी ईश्वर का खंडन तो ठीक करते हैं, परंतु वे पूरे ब्रह्मांड को केवल अचेतन पदार्थ (Dead Matter) मान लेने की भूल कर बैठते हैं, जिससे वे स्वयं की चैतन्य सत्ता (Consciousness) को नकार देते हैं।

उपनिषदों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण**:** अद्वैत वेदांत न तो किसी काल्पनिक ईश्वर को पूजने को कहता है और न ही चेतना को नकारता है। यह कहता है कि **"**तुम स्वयं ही वह परम सत्ता हो**"** (तत्त्वमसि)।

तार्किक निष्कर्ष

ब्रह्म ज्ञान ईश्वर को 'मानने' (Belief) का विषय नहीं, बल्कि स्वयं के 'होने' (Self-Realization) का साक्षात्कार है। विश्वास (Belief) में अज्ञान छिपा होता है, जबकि ज्ञान (Realization) में प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

प्रश्न ९**:** यदि ब्रह्म ही सब कुछ है और वह परम सत्य व आनंद स्वरूप है**,** तो इस संसार में इतना दुःख**,** पाप**,** अत्याचार और वैषम्य क्यों दिखाई देता है**?**

उत्तर**:**

यह प्रश्न दर्शनशास्त्र के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नों में से एक है। दुःख ईश्वर या ब्रह्म ने पैदा नहीं किया है; दुःख केवल अज्ञान (Identified Ignorance) का सह-उत्पाद है।

अज्ञान ही दुःख का मूल है**:** जैसे सपने में व्यक्ति शेर को देखकर डरता है और चिल्लाता है—वह दुःख उस समय बिल्कुल वास्तविक लगता है। परंतु जैसे ही वह जागता है, उसे पता चलता है कि शेर कभी था ही नहीं; केवल उसकी अविद्या (सपना) ही उसके भय का कारण थी।

प्रकृति का कार्य**-**कारण नियम**:** संसार में जो भी पाप या अत्याचार दिखता है, वह मनुष्य के अज्ञानजन्य अहंकार, लोभ और वासना का परिणाम है।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ५, श्लोक १५): "नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥" (परमेश्वर न किसी के पाप कर्म को ग्रहण करता है और न शुभ कर्म को। अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब जीव मोहित और दुःखी हो रहे हैं।)

"नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥"
(परमेश्वर न किसी के पाप कर्म को ग्रहण करता है और न शुभ कर्म को। अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब जीव मोहित और दुःखी हो रहे हैं।

तार्किक निष्कर्ष:

अँधेरे का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता, वह केवल प्रकाश की अनुपस्थिति है। इसी प्रकार दुःख का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वह केवल आत्म-ज्ञान की अनुपस्थिति है। ज्ञानी के लिए दुःख की कोई सत्ता नहीं बचती।

प्रश्न १०: आधुनिक तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और भौतिक समृद्धि के इस युग में ब्रह्म ज्ञान की क्या प्रासंगिकता है?

उत्तर:

आधुनिक युग में ब्रह्म ज्ञान की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है।

आज मनुष्य के पास बाहर की समृद्धि, तकनीक और सुविधाएँ तो अपरंपार हैं, परंतु आंतरिक शांति, विवेक और दिशा का घोर अभाव है। मानसिक तनाव, अवसाद (Depression) और एकाकीपन चरम पर हैं।

तकनीक बनाम चेतना: AI और आधुनिक तकनीकें बुद्धि (Intelligence) का विकल्प हो सकती हैं, परंतु वे 'चेतना' (Consciousness), 'करुणा' और 'साक्षी भाव' का स्थान कभी नहीं ले सकतीं।

बाहरी साधनों की सीमा: कोई भी कार, मोबाइल या भौतिक वस्तु मनुष्य को निर्भयता और अखंड आनंद नहीं दे सकती।

बृहदारण्यकोपनिषद् (२.४.५): "न वा अरे वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो... आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।" (धन या भौतिक साधनों से मनुष्य कभी पूर्ण तृप्त नहीं हो सकता। शांति और तृप्ति तो केवल आत्म-तत्त्व के बोध और साक्षात्कार से ही संभव है।)

"न वा अरे वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो... आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।"
(धन या भौतिक साधनों से मनुष्य कभी पूर्ण तृप्त नहीं हो सकता। शांति और तृप्ति तो केवल आत्म-तत्त्व के बोध और साक्षात्कार से ही संभव है।)

तार्किक निष्कर्ष:
तकनीक यदि हाथ में है और विवेक (ब्रह्म ज्ञान) मस्तिष्क में नहीं है, तो मनुष्य विनाश की ओर बढ़ता है। ब्रह्म ज्ञान आधुनिक मनुष्य को यह सिखाता है कि बाहरी उपकरणों का कुशलता से उपयोग करते हुए भी आंतरिक रूप से असंग और शांत कैसे रहा जाए।

अध्याय २३: आधुनिक समाज में ब्रह्म ज्ञान का क्रियान्वयन और सामाजिक क्रांति

१. व्यक्तिगत मुक्ति से सामाजिक चेतना का उदय

प्रायः यह भ्रम फैलाया जाता है कि ब्रह्म ज्ञान केवल व्यक्ति की व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित है। परंतु वास्तविक ब्रह्म ज्ञानी समाज से कटकर नहीं जीता, बल्कि उसकी जाग्रत चेतना समाज में करुणा, न्याय और क्रांति का आधार बनती है।

जब मनुष्य को यह बोध होता है कि समाज का प्रत्येक घटक—चाहे वह किसी भी वर्ग, जाति या स्थिति का हो—उसी एक ब्रह्म-चेतना की अभिव्यक्ति है, तो सामाजिक विषमता और शोषण का अंत स्वतः होने लगता है।

"अद्वैत बोध ही वास्तविक भ्रातृभाव की जननी है। जब तक भेद रहेगा, तब तक भय और शोषण रहेगा।"

२. अध्यात्म का व्यावसायीकरण और उसका उच्छेद

आज अध्यात्म को 'उत्पाद' (Product) और श्रद्धालुओं को 'उपभोक्ता' (Consumer) बना दिया गया है। बड़े-बड़े शिविर, महंगे दीक्षा कार्यक्रम और मुक्ति के पैकेज बेचे जा रहे हैं।

- मुंडकोपनिषद् का कठोर संदेश: "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।" (अमरत्व या ब्रह्म ज्ञान न तो कर्मकांडों से, न संतान से और न ही धन से प्राप्त होता है; वह केवल अहंकार और अज्ञान के त्याग से ही प्राप्त होता है।)
- "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।"
  (अमरत्व या ब्रह्म ज्ञान न तो कर्मकांडों से, न संतान से और न ही धन से प्राप्त होता है; वह केवल अहंकार और अज्ञान के त्याग से ही प्राप्त होता है।)
  ब्रह्म ज्ञान यह स्पष्ट घोषणा करता है कि जो ज्ञान धन से खरीदा जाए या व्यापार की वस्तु बने, वह ज्ञान नहीं बल्कि अज्ञान का विपणन है।

- अध्याय २४: उपनिषद् और अद्वैत दर्शन के प्रमुख श्लोक व उनका तार्किक अर्थ

इस अध्याय में अद्वैत वेदांत के उन आधारभूत मंत्रों का संकलन है जो पाखंड की जड़ों पर सीधा प्रहार करते हैं:

१. ईशावास्योपनिषद् (मंत्र ६)
"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥"

अर्थ: जो मनुष्य सभी प्राणियों को अपने ही आत्म-तत्त्व में देखता है और सभी प्राणियों में अपनी ही आत्मा का दर्शन करता है, वह किसी से घृणा नहीं कर सकता।

तार्किक विश्लेषण: जब सब कुछ एक ही चेतना है, तो घृणा, ईर्ष्या और भेद-भाव का कोई अस्तित्व ही नहीं बचता।

२. विवेकचूडामणि (महर्षि शंकराचार्य - श्लोक ५६)
"न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिध्यति नान्यथा॥"

अर्थ: न योग से, न सांख्य दर्शन से, न केवल कर्मकांडों से और न ही केवल पुस्तकों की विद्या से मोक्ष मिलता है। मोक्ष केवल ब्रह्म और आत्मा की एकता के यथार्थ बोध से ही सिद्ध होता है, अन्य किसी मार्ग से नहीं।

तार्किक विश्लेषण: बाह्य योग-क्रियाएँ या पठन-पाठन केवल माध्यम हो सकते हैं, परंतु वास्तविक मुक्ति केवल आंतरिक बोध से ही संभव है।

३. अष्टावक्र गीता (अध्याय १५, श्लोक १)
"यथा तथा उपदिशतु भूयः श्रुत्वा तु न सम्भ्रमात्।
न शक्यते मनो वस्तु निरस्तविषयं त्वया॥"

अर्थ: कोई कितना भी उपदेश दे ले या तुम कितना भी सुन लो, जब तक तुम बाह्य विषयों और बाह्य भ्रमों का त्याग कर अपने भीतर स्थित शांत तत्त्व को नहीं पहचानते, तब तक परम शांति संभव नहीं है।

अध्याय २५: सत्य मार्ग पर अविचल पदचाप

इस संपूर्ण ग्रन्थ का एक ही मूल संदेश है: भय, लालच और पाखंड से मुक्त होकर अपने भीतर की जाग्रत चेतना में स्थित होना।

ईश्वर कोई दूर आसमान में बैठा न्यायधीश नहीं, आपकी अपनी आत्मा ही ब्रह्म है।

समाधि कोई आँख बंद करके सोने की स्थिति नहीं, बल्कि जागृत अवस्था में जिया गया सजग जीवन है।

धर्म कोई कर्मकांड या वेशभूषा नहीं, बल्कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा और सत्य का आचरण है।

अध्याय २६: आकांक्षाओं का द्वंद्व, युवा मन और यथार्थ का बोध

मानव जीवन का एक बड़ा हिस्सा कल्पनाओं, आकांक्षाओं और अधूरी इच्छाओं के द्वंद्व में बीतता है। बचपन और युवावस्था में मन बिना किसी मानसिक विकास या व्यावहारिक समझ के बड़ी-बड़ी उड़ानों में बहने लगता है। जब यथार्थ की भूमि से टकराकर ये कल्पनाएँ टूटती हैं, तो जीवन में हताशा, निराशा और हीनभावना का उदय होता है।

इस अध्याय में समाज की इन्हीं जमीनी उलझनों, युवाओं की भटकती सोच और व्यावहारिक जीवन-संतुलन पर आधारित तार्किक प्रश्न-उत्तर प्रस्तुत हैं:

प्रश्न १: बचपन में बच्चे अक्सर असंभव या अति-काल्पनिक बातें सोचते हैं—जैसे 'मैं जू पर बंगला बनाऊँगा' या 'मैं देश का प्रधानमंत्री बनूँगा'। जब बड़े होकर ये सपने पूरे नहीं होते, तो वे निराशा और हीनभावना से भर जाते हैं। इस काल्पनिक सोच और हताशा के चक्र से कैसे बचा जाए?

उत्तर:

बचपन का मन कच्चा और अपरिपक्व होता है। उसे संसार की भौतिक सीमाओं, कार्य-कारण के नियमों और सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान नहीं होता। समस्या कल्पना करने में नहीं है, समस्या तब पैदा होती है जब समाज और माता-पिता बच्चों के भीतर "सफलता = केवल पद, धन या बड़ा नाम" का गलत मापदंड भर देते हैं।

1. सपनों और यथार्थ का संतुलन**:** बच्चों को केवल बड़े सपने देखना ही न सिखाया जाए, बल्कि उन सपनों को पूरा करने के लिए आवश्यक क्षमता *(Capacity),* निरंतर अभ्यास *(Effort)* और प्राकृतिक सीमाओं का विवेक भी दिया जाए।
2. सफलता की परिभाषा का रूपांतरण**:** प्रधानमंत्री बनना या महल बनाना ही जीवन की सफलता नहीं है। अपने स्वभाव (Swadharma) को पहचानकर विवेक और ईमानदारी से जीना ही सच्ची सफलता है।
3. परिणाम से मुक्ति**:** जब युवा यह समझ लेता है कि प्रयास उसके हाथ में है पर परिणाम कई बाहरी घटकों पर निर्भर करता है, तो असफलता में निराशा नहीं होती।
4. *"*सपना देखना बुरा नहीं है*,* परंतु सपने को ही अपनी पहचान बना लेना और उसके टूटने पर स्वयं को व्यर्थ समझ लेना अज्ञान है।*"*

   प्रश्न २**:** कई युवा पढ़ाई करते-करते अचानक सब कुछ छोड़कर **'**भगवान की खोज**'** या अध्यात्म के नाम पर भाग जाते हैं। क्या यह सच्चा अध्यात्म है या जिम्मेदारियों से भागने का एक बहाना**?**

   उत्तर**:**

   अधिकांश मामलों में यह सच्चा अध्यात्म नहीं, बल्कि संसार की असफलताओं और तनाव से भागने की एक मानसिक वृत्ति **(Escapism)** है।

   जब युवा जीवन की चुनौतियों, पढ़ाई के दबाव या सामाजिक प्रतिस्पर्धा को झेल नहीं पाते, तो वे 'ईश्वर' या 'संन्यास' का आवरण ओढ़ लेते हैं ताकि उन्हें अपनी असफलता स्वीकार न करनी पड़े।

उपनिषद और गीता का स्पष्ट दृष्टिकोण**:** संसार से भागना संन्यास नहीं है। अर्जुन जब युद्ध क्षेत्र छोड़कर भागना चाहता था, तो श्रीकृष्ण ने उसे भागने नहीं दिया, बल्कि अपने कर्तव्य को जाग्रत चेतना के साथ पूरा करने की प्रेरणा दी।

कठोपनिषद् **(१.३.१४):** *"*उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।*"* *(*उठो*,* जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान को प्राप्त करो।*)*

*"*उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।*"*

*(*उठो*,* जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान को प्राप्त करो।*)*

तार्किक निष्कर्ष**:**

ईश्वर को खोजने के लिए घर-परिवार या कर्तव्य छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। अपने जीवन के कर्तव्यों को ईमानदारी, निष्काम भाव और सजगता से निभाना ही सच्चा ब्रह्म ज्ञान है। भागना कमज़ोरी है, जागना अध्यात्म है।

प्रश्न ३**:** जब तक व्यक्ति का दिमाग **(**विवेक**)** पूरी तरह विकसित नहीं होता**,** तब तक उससे गलतियाँ होना स्वाभाविक है। तो क्या अज्ञानता में की गई गलतियों का दंड व्यक्ति को भुगतना पड़ता है**?** इससे कैसे उबरें**?**

उत्तर:
प्रकृति और चेतना का नियम अत्यंत निष्पक्ष है। जैसे बिना जाने आग में हाथ डालने पर भी हाथ जलता ही है, वैसे ही अज्ञानता में किए गए गलत निर्णय भी अपना स्वाभाविक परिणाम (दुःख या असंतुलन) लाते हैं।
परंतु ब्रह्म ज्ञान मनुष्य को अपराध-बोध (Guilt) में जीने के बजाय **'आत्म-सुधार'** का मार्ग दिखाता है:

गलती को स्वीकारना **(Acceptance):** यह समझना कि "उस समय मेरी चेतना का स्तर कम था, इसलिए मुझसे वह भूल हुई।" स्वयं को कोसने के बजाय उस भूल से सीख लें।

विवेक का विकास **(Developing Discernment):** जैसे-जैसे मनुष्य साक्षी भाव और आत्म-निरीक्षण (Self-reflection) का अभ्यास करता है, उसका मस्तिष्क परिपक्व होता है और गलतियों की आवृत्ति घटने लगती है।

अतीत से असंगता**:** बीता हुआ कल केवल एक स्मृति (Memory) है। जो बीत गया, वह आप नहीं हैं; आप केवल इस वर्तमान क्षण की जाग्रत चेतना हैं।

प्रश्न ४**:** समाज में हर कोई **'**शीर्ष**'** पर पहुँचना चाहता है। यदि हर कोई प्रधानमंत्री**,** राजा या सबसे बड़ा अमीर बनना चाहेगा**,** तो बाकी समाज कैसे चलेगा**?** जीवन का वास्तविक ढाँचा कैसा होना चाहिए**?**
उत्तर**:**
यह होड़ 'अहंकार' और 'तुलना' (Comparison) की उपज है। समाज ने एक अप्राकृतिक ढाँचा बना दिया है कि केवल ऊँचे पदों पर बैठे लोग ही सम्मानित हैं, जबकि एक किसान, शिक्षक, कारीगर या सफाईकर्मी का योगदान कम माना जाता है।

अद्वैत दृष्टि से समाज का ढाँचा**:** जैसे शरीर के लिए आँख, कान, हाथ और पैर—सभी का अपना-अपना महत्व है और कोई किसी से छोटा या बड़ा नहीं है; वैसे ही समाज के हर कार्य की अपनी गरिमा (Dignity of Labor) है।

श्रीमद्भगवद्गीता **(**अध्याय १८**,** श्लोक ४७**):** *"*श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।*"* *(*दूसरों के कार्य की नकल करने की तुलना में अपना स्वाभाविक कार्य *(*गुणों के अनुसार कार्य*)* अधूरा भी हो तो अधिक श्रेयस्कर है।*)*

*"*श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।*"*

*(*दूसरों के कार्य की नकल करने की तुलना में अपना स्वाभाविक कार्य *(*गुणों के अनुसार

कार्य*)* अधूरा भी हो तो अधिक श्रेयस्कर है।*)*
तार्किक निष्कर्ष**:**

मनुष्य का जीवन दूसरों से आगे निकलने की रेस नहीं है। अपनी आंतरिक क्षमता (Aptitude) को पहचानकर, शांत मन से समाज की सेवा में योगदान देना ही जीवन का संतुलित ढाँचा है।

अध्याय २७: युवाओं का सही दिशा-निर्देशन और अभिभावकों का दायित्व

बच्चों और युवाओं के मन को केवल दार्शनिक ज्ञान दे देने से समस्या हल नहीं होती। जब तक परिवार और घर के वातावरण में विवेकपूर्ण समझ विकसित नहीं होगी, तब तक नई पीढ़ी इसी मानसिक भटकाव, अति-महत्वाकांक्षा और अवसाद का शिकार बनती रहेगी।

प्रश्न ५**:** माता-पिता अक्सर बच्चों पर अपनी अधूरी इच्छाएँ **(**जैसे इंजीनियर**,** डॉक्टर या बड़ा अफ़सर बनने की होड़**)** थोप देते हैं। जब बच्चा उस दबाव को सहन नहीं कर पाता**,** तो वह टूट जाता है। अभिभावकों के लिए ब्रह्म ज्ञान का क्या संदेश है**?**

उत्तर**:**

यह समाज का एक अत्यंत गंभीर और हानिकारक पाखंड है। माता-पिता बच्चों को 'स्वतंत्र आत्मा' न मानकर उन्हें अपनी संपत्ति या अपने अधूरे सपनों को पूरा करने का साधन (Instrument) मान लेते हैं।

- अहंकार का विस्तार**:** जब कोई माता-पिता यह सोचता है कि "मेरा बच्चा समाज में मेरा नाम रोशन करे ताकि मेरी प्रतिष्ठा बढ़े," तो यह बच्चा-प्रेम नहीं, बल्कि माता-पिता का अपना अहंकार है।
- स्वधर्म का सम्मान**:** हर बच्चे के भीतर अपनी एक अनूठी क्षमता, रुचि और चेतना होती है। उपनिषदों की दृष्टि में हर जीव अपने आप में पूर्ण ब्रह्म का रूप है।
- "बच्चों पर अपने सपने थोपना उनके भीतर की चेतना की मौलिकता का हनन करना है।"
  अभिभावकों के लिए व्यावहारिक सूत्र**:**

बच्चे को अपनी आकांक्षाओं का गुलाम न बनाएँ; उसे एक दृष्टा (Observer) की तरह समझें और मार्गदर्शन दें।

उसे यह सिखाएँ कि जीवन में **'**सज्जनता**,** ईमानदारी और आंतरिक शांति**'** पाना किसी भी बड़े पद या डिग्री से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रश्न ६: आज की नई पीढ़ी सोशल मीडिया और इंटरनेट के दौर में है, जहाँ दिखावा **(Show-off),** रील्स और दूसरों की झूठी अमीर-ज़िंदगी देखकर उनमें गहरा असंतोष और हीनभावना पनप रही है। इस बाह्य चमक-धमक के प्रभाव से युवा मन को कैसे बचाया जाए?

उत्तर:

आधुनिक तकनीक ने अज्ञान और बाह्य आडंबर को और अधिक बढ़ा दिया है। सोशल मीडिया वास्तव में 'माया' का आधुनिक रूप है, जहाँ हर व्यक्ति अपनी कमज़ोरियों को छुपाकर केवल अपनी कृत्रिम चमक-धमक का प्रदर्शन कर रहा है।

असत्य की पहचान: युवाओं को यह समझाना होगा कि परदे पर दिखाई देने वाली दुनिया 'सत्य' नहीं है। वह संपादित (Edited) और प्रायोजित (Sponsored) भ्रम है।

महर्षि पतंजलि का विवेक सूत्र: *"प्रतिपक्षभावनम्" (जब मन में तुलना, ईर्ष्या या हीनभावना के विचार आएँ, तो तुरंत उसके विपरीत सत्य का विचार करो।)*

"प्रतिपक्षभावनम्"

(जब मन में तुलना, ईर्ष्या या हीनभावना के विचार आएँ, तो तुरंत उसके विपरीत सत्य का विचार करो।)

तार्किक समाधान:

डिजिटल उपवास **(Digital Fasting):** युवाओं को प्रतिदिन कुछ समय इंटरनेट और स्क्रीन से दूर रहकर प्रकृति, आत्म-चिंतन और एकांत के साथ बिताने का अभ्यास करना चाहिए।

आंतरिक मूल्य बनाम बाह्य वस्तुएँ: उन्हें यह स्पष्ट दिखे कि महंगे कपड़े, गाड़ियां या सोशल मीडिया के 'लाइक्स' किसी को आंतरिक शांति या निर्भयता नहीं दे सकते। सच्चा सुख अपने भीतर की स्थिरता में है, बाहर के प्रदर्शन में नहीं।

प्रश्न ७: जब युवा जीवन में पहली बार किसी बड़े असफलता (जैसे परीक्षा में फेल होना, व्यापार में घाटा या रिश्ते का टूटना) का सामना करता है, तो वह आत्म-हत्या या डिप्रेशन के विचार तक पहुँच जाता है। उस कठिन क्षण में कौन सी समझ उसे बचा सकती है?

उत्तर:

असफलता से पैदा होने वाला डिप्रेशन या आत्महत्या का विचार केवल इसलिए आता है क्योंकि व्यक्ति 'घटना' को ही 'अपना संपूर्ण अस्तित्व' मान बैठता है। वह सोचता है—
"परीक्षा फेल हो गई, मतलब मैं फेल हो गया।"

यह तादात्म्य (Identification) ही अज्ञान है।

अद्वैत का रक्षा-कवच: ब्रह्म ज्ञान व्यक्ति को यह बोध कराता है कि आप जीवन में घटित होने वाली किसी भी घटना से बहुत बड़े हैं। घटनाएँ आती-जाती लहरें हैं, आप स्वयं अगाध समुद्र हैं।

अष्टावक्र गीता (अध्याय १०, श्लोक ३): "किमत्र चित्रं यदहं चिद्रूपः सर्वभावगः।" (इसमें क्या आश्चर्य है कि मैं विशुद्ध चैतन्य सत्ता हूँ, जो सभी परिस्थितियों और अवस्थाओं के पार स्थित है।)

"किमत्र चित्रं यदहं चिद्रूपः सर्वभावगः।"
(इसमें क्या आश्चर्य है कि मैं विशुद्ध चैतन्य सत्ता हूँ, जो सभी परिस्थितियों और अवस्थाओं के पार स्थित है।)
संकट के समय का व्यावहारिक दृष्टिकोण:

'यह भी बीत जाएगा' (Impermanence): जीवन की कोई भी स्थिति, चाहे कितनी भी दुखद क्यों न हो, स्थायी नहीं है।

असफलता केवल एक अनुभव है: परीक्षा या व्यापार में असफल होना केवल एक परिणाम है, आपके जीवन का अंत नहीं। जब तक श्वास चल रही है, सुधार और नए मार्ग की संभावना हमेशा खुली है।

अध्याय २८: गृहस्थ जीवन और ब्रह्म ज्ञान — रिश्तों में सामंजस्य, त्याग और असंगता

अक्सर यह भ्रांति पाई जाती है कि ब्रह्म ज्ञान केवल संन्यासियों या गृह-त्यागियों के लिए है और गृहस्थ जीवन अध्यात्म के मार्ग में बाधा है। यह सोच अज्ञानजन्य है। गृहस्थ जीवन वास्तव में ब्रह्म ज्ञान की सबसे बड़ी प्रयोगशाला है, जहाँ व्यक्ति हर दिन अपने प्रेम, धैर्य, त्याग और साक्षी भाव की परीक्षा देता है।

प्रश्न ८: गृहस्थ जीवन में अक्सर पारिवारिक मतभेद, सास-बहू के झगड़े, पति-पत्नी में वैचारिक अंतर और आर्थिक खींचतान होती रहती है। ऐसे वातावरण में व्यक्ति शांत और साक्षी भाव में कैसे रहे?

उत्तर:

घर के भीतर का तनाव और झगड़े केवल इसलिए उत्पन्न होते हैं क्योंकि परिवार के सदस्य एक-दूसरे को 'अहंकार' (Ego) के चश्मे से देखते हैं और हर व्यक्ति सामने वाले को अपने अनुसार बदलना चाहता है।

बदलने की जिद्द छोड़ना **(Acceptance):** दूसरे व्यक्ति को उसके स्वभाव और चेतना के स्तर के साथ स्वीकार करना ही शांति की पहली शर्त है। जब आप यह समझ लेते हैं कि हर व्यक्ति अपने संस्कारों और अज्ञान के अनुसार ही व्यवहार कर रहा है, तो उससे अपेक्षाएँ खत्म हो जाती हैं।

'प्रतिक्रिया' के स्थान पर 'सजगता' (Response over Reaction): जब घर में कोई कटु शब्द कहे या झगड़े की स्थिति बने, तो तुरंत तीखी प्रतिक्रिया देने के बजाय ५ सेकंड का मौन धारण करें। याद रखें कि सामने वाले का क्रोध उसका अपना मानसिक असंतुलन है, उसे अपने भीतर लेने की आवश्यकता नहीं है।

गृहस्थ में असंगता **(Detachment in Attachment):** जैसे कमल का फूल कीचड़ और जल में रहते हुए भी उससे अछूता रहता है, वैसे ही परिवार के प्रति अपने सारे कर्तव्यों को प्रेम से निभाते हुए भी आंतरिक रूप से यह याद रखें कि आप इस संसारी नाटक के केवल एक पात्र हैं, दृष्टा हैं।

प्रश्न ९: पति-पत्नी या पारिवारिक रिश्तों में **'प्रेम'** और **'आसक्ति' (Attachment)** के बीच क्या अंतर है? अति-आसक्ति दुःख का कारण क्यों बनती है?

उत्तर:

साधारण मनुष्य 'आसक्ति' को ही 'प्रेम' समझने की भूल कर बैठता है, जबकि दोनों में ज़मीन-आसमान का अंतर है:

आसक्ति **(Attachment)** का स्वरूप: आसक्ति स्वार्थ और अधिकार-भाव से जन्म लेती है। इसमें व्यक्ति सोचता है— *"यह व्यक्ति मेरा है, इसे मेरी इच्छा के अनुसार चलना चाहिए, यह मुझे छोड़कर न जाए।"* आसक्ति में भय, ईर्ष्या, असुरक्षा और नियंत्रण (Control) की भावना होती है। जब सामने वाला व्यक्ति या वस्तु दूर होती है, तो भारी दुःख होता है।

प्रेम **(Pure Love)** का स्वरूप: सच्चा प्रेम स्वतंत्रता देता है, अधिकार नहीं जमाता। इसमें देने का भाव होता है, माँगने का नहीं। जब आप सामने वाले के भीतर भी उसी ब्रह्म-चेतना का दर्शन करते हैं, तो वह प्रेम बिना किसी शर्त के बहता है।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १३, श्लोक १०): *"असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।"*
(पुत्र, स्त्री, घर आदि में अति-आसक्ति और ममता का न होना ही ज्ञान का लक्षण है।)

"असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।"
(पुत्र, स्त्री, घर आदि में अति-आसक्ति और ममता का न होना ही ज्ञान का लक्षण है।)

तार्किक निष्कर्ष:

परिवार से प्रेम करें, उनकी सेवा करें, परंतु यह मानकर न बैठें कि वे आपकी संपत्ति हैं। सब अपनी-अपनी आध्यात्मिक यात्रा पर हैं। जब यह विवेक जाग्रत होता है, तो रिश्तों का मोह दुःख का कारण नहीं बनता।

प्रश्न १०: गृहस्थ जीवन में धन कमाने, व्यापार करने और परिवार के भरण-पोषण के लिए निरंतर दौड़-भाग करनी पड़ती है। क्या धन कमाना और भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाना ब्रह्म ज्ञान के विरुद्ध है?

उत्तर:

बिल्कुल नहीं। धन या भौतिक संसाधन अपने आप में न तो अच्छे होते हैं और न बुरे; सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उनके पीछे आपका 'दृष्टिकोण' (Attitude) क्या है।

धर्मयुक्त अर्थ **(Ethical Wealth):** ईमानदारी, सत्य और विवेक से धन कमाना गृहस्थ का परम धर्म है। उपनिषदों ने कभी गरीबी या दरिद्रता का समर्थन नहीं किया।

संग्रहवृत्ति और लोभ से बचाव: धन जीवन निर्वाह और समाज-सेवा का साधन है, जीवन का अंतिम साध्य नहीं। जब धन कमाना 'अहंकार' और 'दूसरों के शोषण' का जरिया बन जाता है, तब वह अज्ञान बन जाता है।

अमानुषी होड़ से मुक्ति: दूसरों से आगे निकलने की अंधी दौड़ के बजाय अपने परिवार की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निष्काम कर्मयोग के रूप में व्यापार या नौकरी करें।

"धन का हाथ में होना समस्या नहीं है, धन का मन में बैठ जाना ही अज्ञान है।"

प्रश्न ११: जब परिवार में किसी प्रियजन की अचानक मृत्यु हो जाती है, तो गृहस्थ पूरी तरह टूट जाता है। उस समय शोक और संताप से उबरने के लिए ब्रह्म ज्ञान कैसे संबल प्रदान करता है?

उत्तर:

शोक और संताप का मुख्य कारण यह भ्रांति है कि "यह शरीर ही मेरा प्रियजन था और अब वह हमेशा के लिए नष्ट हो गया।"

शरीर और आत्मा का विवेक: ब्रह्म ज्ञान यह स्पष्ट करता है कि जन्म और मृत्यु केवल इस भौतिक शरीर के धर्म हैं। जो चेतना उस शरीर में विद्यमान थी, वह न तो कभी जन्मी थी और न ही कभी मरती है।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २, श्लोक २७): "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।" (जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, और जो मरा है उसका जन्म निश्चित है; इसलिए इस अपरिहार्य विषय पर शोक करना व्यर्थ है।)

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।"

(जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, और जो मरा है उसका जन्म निश्चित है; इसलिए इस अपरिहार्य विषय पर शोक करना व्यर्थ है।)

व्यावहारिक सांत्वना:

प्रियजन के जाने पर दुःख होना प्राकृतिक मानवीय संवेदना है, परंतु उस दुःख को हताशा या जीवन-समाप्ति की ओर न ले जाएँ। यह समझें कि जैसे हम यात्रा में एक स्टेशन पर मिलते हैं और आगे बिछुड़ जाते हैं, वैसे ही यह संसार एक सराय है। प्रियजन की स्मृतियों का सम्मान करते हुए शांत मन से अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ना ही सच्ची श्रद्धांजलि है।

अध्याय २९: वृद्धावस्था, शारीरिक व्याधियाँ और जीवन का अंतिम पड़ाव

जीवन का अंतिम पड़ाव—वृद्धावस्था और बीमारियाँ—मनुष्य के धैर्य, विवेक और आत्म-ज्ञान की सबसे कठिन परीक्षा का काल होता है। जब शरीर थकने लगता है, इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और बीमारियाँ घेर लेती हैं, तब बाह्य कर्मकांड या कोरी बातें काम नहीं आतीं। केवल जाग्रत ब्रह्म ज्ञान ही मनुष्य को शांत, निर्भय और अखंड आनंद में स्थित रख सकता है।

प्रश्न १२: वृद्धावस्था में प्रायः मनुष्य उपेक्षित महसूस करता है। बच्चे अपने जीवन में व्यस्त हो जाते हैं, शरीर साथ नहीं देता, और मन में अकेलापन **(Loneliness)** छा जाता है। इस अकेलेपन को 'एकांत' और 'आनंद' में कैसे बदला जाए?

उत्तर:

संसार में अकेलापन और एकांत में ज़मीन-आसमान का अंतर है:

अकेलापन **(Loneliness):** यह अज्ञानजन्य मानसिक अवस्था है, जहाँ व्यक्ति दूसरों से अपेक्षाएँ रखता है कि "कोई आए, मुझसे बात करे, मेरी सेवा करे।" जब यह अपेक्षा पूरी नहीं होती, तो मन में उपेक्षा, दुःख और शिकायतें भर जाती हैं।

एकांत **(Solitude):** यह ज्ञानजन्य अवस्था है। जब मनुष्य को यह बोध होता है कि मेरी वास्तविक सत्ता दूसरों के सहारे पर नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर स्थित ब्रह्म-तत्त्व में है, तो वह अकेलेपन को अपनी आध्यात्मिक साधना का स्वर्ण-अवसर बना लेता है।

उपनिषदों की दृष्टि: वृद्धावस्था वास्तव में संसार के कोलाहल से मुड़कर अपने भीतर लौटने (अंतर्मुखी होने) का प्राकृतिक आमंत्रण है।

"जब बाह्य संबंध टूटने लगें, तो समझें कि प्रकृति आपको अपने शाश्वत रूप से जुड़ने का अवसर दे रही है।"

वृद्ध अवस्था में मन की दिशा बदलने के सूत्र:

अपेक्षाओं का विसर्जन: बच्चों या समाज से उपेक्षा की शिकायत छोड़ें। सबको अपना जीवन जीने की स्वतंत्रता दें।

साक्षी भाव का अभ्यास: अकेले बैठकर दुखी होने के बजाय स्वाध्याय (सद्ग्रंथों का पठन), नाम-स्मरण और अपने उठते विचारों को शांत होकर देखने का अभ्यास करें।

करुणा का प्रसार: शिकायत करने वाले वृद्ध बनने के बजाय प्रेम और आशीर्वाद देने वाले स्नेही वंदनीय पुरुष बनें।

प्रश्न १३: जब शरीर में गंभीर बीमारियाँ (जैसे कैंसर, लकवा या कोई दीर्घकालिक रोग) आ जाती हैं और असह्य दर्द होता है, तो मन विचलित हो जाता है। शारीरिक कष्ट के बीच ब्रह्म ज्ञान कैसे संबल देता है?

उत्तर:

बीमारी और शारीरिक पीड़ा के समय सबसे बड़ा भ्रम यह होता है कि मनुष्य **"दर्द" (Physical Pain)** को ही **"दुःख" (Mental Suffering)** मान लेता है।

दर्द और दुःख में अंतर: दर्द (Pain) केवल शरीर और नसों की एक भौतिक संवेदना (Sensation) है। दुःख (Suffering) तब पैदा होता है जब मन उस दर्द से लड़ता है, घबराता है और सोचता है— *"यह मेरे साथ ही क्यों हुआ?"*

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय २, श्लोक १४): *"मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥" (हे अर्जुन! इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले, आने-जाने वाले और अनित्य हैं; इसलिए उन्हें सहो।)*

"मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥"
(हे अर्जुन! इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले, आने-जाने वाले और अनित्य हैं; इसलिए उन्हें सहो।)

बीमारी में साधना का सूत्र:

शरीर और स्वयं को अलग देखना: यह निरंतर स्मरण रखें कि "बीमारी शरीर को हुई है, मुझे (आत्मा को) नहीं। मैं इस बीमार शरीर को देखने वाला चैतन्य साक्षी हूँ।"

स्वीकार भाव **(Acceptance):** जो शरीर बना है, वह एक दिन बीमार भी होगा और नष्ट भी होगा। यह प्रकृति का नियम है। जब आप बीमारी से लड़ना छोड़कर उसे स्वीकार कर लेते हैं, तो मन का ५०% दुःख तुरंत समाप्त हो जाता है।

प्रश्न १४: जीवन के अंतिम क्षणों में मृत्यु का भय हर व्यक्ति को सताता है। शांतिपूर्वक और निर्भय होकर मृत्यु का आलिंगन कैसे किया जाए**?**
उत्तर**:**
मृत्यु का भय केवल इसलिए है क्योंकि मनुष्य ने जीवन भर इस भ्रांति को पाल रखा है कि "मैं यह ५-६ फीट का मांस और हड्डियों का पुतला हूँ।"

जब वस्त्र पुराना और जर्जर हो जाता है, तो उसे उतारते समय कोई दुखी नहीं होता; ठीक वैसे ही ज्ञानी पुरुष शरीर छूटने को केवल एक वस्त्र बदलना मानता है।

कठोपनिषद् **(२.३.१६):** ज्ञानी व्यक्ति मृत्यु को अंत नहीं, बल्कि अपनी असीम, अनंत ब्रह्म-स्थिति में वापस लीन होना मानता है।

शांतिपूर्ण मृत्यु **(Holy Departure)** के ३ नियम**:**

संसार का मोह छोड़ना: अंतिम समय में संपत्ति, परिवार या पुरानी बातों का चिंतन छोड़ दें। जो जहाँ है, उसे वहीं समर्पित कर दें।

क्षमा और मुक्ति: यदि जीवन में किसी से बैर या शिकायत रही हो, तो मन ही मन सबको क्षमा कर दें और स्वयं भी क्षमा माँग लें। मन का भारीपन लेकर न जाएँ।

अंतिम चेतना: अंतिम श्वास तक केवल अपने भीतर की जाग्रत साक्षी चेतना या ओंकार/सत्य का ही स्मरण रखें।

*"*जो जीते जी अज्ञान से मुक्त हो गया*,* मृत्यु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। उसके लिए मृत्यु एक उत्सव है।*"*

अध्याय ३०: अद्वैत वेदांत और भावी विश्व — एक जाग्रत और भयमुक्त समाज की परिकल्पना

जब अद्वैत वेदांत का सर्व-समभाव और निष्काम भाव व्यक्तिगत जीवन से निकलकर वैश्विक स्तर पर क्रियान्वित होता है, तब एक नवीन मानवीय चेतना का जन्म होता है।

यह अध्याय एक ऐसे जाग्रत, भयमुक्त और अखंड विश्व की रूपरेखा प्रस्तुत करता है जो केवल दार्शनिक कल्पना नहीं, बल्कि आने वाली मानवता की अनिवार्य आवश्यकता है।

१. 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' — वैश्विक एकता का दार्शनिक आधार

संसार में अब तक जितने भी युद्ध, जातीय नरसंहार और संप्रदायवादी हिंसायें हुई हैं, उन सबका मूल कारण 'भेद-बुद्धि' (Dualistic Mindset) है—यह मानना कि "हम अलग हैं और वे अलग हैं।"

- विभाजन से मुक्ति: अद्वैत बोध का अर्थ ही यह है कि चेतना के धरातल पर कोई दूसरा (Other) है ही नहीं।
- भय का अंत: बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं— "द्वितीयाद्वै भयं भवति" (जहाँ दूसरे का भाव होता है, वहीं भय उत्पन्न होता है)। जब मनुष्य को यह दिखता है कि सामने वाला व्यक्ति, विरोधी या शत्रु भी उसी चेतना का रूप है, तो भय और हिंसा का आधार ही समाप्त हो जाता है।

२. प्रकृति, पर्यावरण और अद्वैत **(Ecological Non-Dualism)**

मानव जाति द्वारा प्रकृति का क्रूर शोषण केवल भौतिक समस्या नहीं है; यह एक गहरा आध्यात्मिक संकट है। जब मनुष्य प्रकृति को केवल 'उपभोग की वस्तु' (Resource to be exploited) मान लेता है, तो वह पूरे पर्यावरण को विनाश के कगार पर ला खड़ा करता है।

प्रकृति ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है: उपनिषद सिखाते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और संपूर्ण वनस्पति जगत ब्रह्म का ही भौतिक स्वरूप हैं।

पारिस्थितिकी संतुलन: जब अद्वैत की समझ जाग्रत होती है, तो मनुष्य प्रकृति का शोषण बंद करके उसके साथ एक लयबद्ध जीवन (Harmonious Co-existence) जीने लगता है। वृक्षों, नदियों और जीवों की रक्षा करना बाहरी धर्म नहीं, बल्कि आत्म-रक्षा का स्वाभाविक अंग बन जाता है।

तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता **(AI)** और चेतना का संतुलन

भविष्य के विश्व में तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का वर्चस्व अभूतपूर्व रूप से बढ़ेगा। यदि इस वैज्ञानिक प्रगति के साथ आत्म-ज्ञान का विवेक नहीं जुड़ा, तो मानव जाति अपनी ही बनाई तकनीक की मानसिक दास बन जाएगी।

बुद्धि और चेतना का अंतर: AI सूचनाओं को प्रोसेस कर सकता है और बौद्धिक कार्य कर सकता है, परंतु वह 'साक्षी चेतना' (Self-Awareness) और 'करुणा' का विकल्प नहीं बन सकता।

आंतरिक स्वतंत्रता: ब्रह्म ज्ञान आधुनिक मनुष्य को तकनीक का कुशलता से उपयोग करना सिखाता है, बिना उसके मोह और जाल में फँसे। बाहरी साधन जितने शक्तिशाली होंगे, आंतरिक विवेक (साक्षी भाव) की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी।

४. अद्वैत क्रांति का अंतिम संदेश

सच्चा धर्म किसी मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर या धार्मिक पोथियों में सीमित नहीं है। सच्चा धर्म जीवन की हर श्वास में सजगता, निडरता और प्राणिमात्र के प्रति करुणा बनकर बहना है।

"अज्ञान ही एकमात्र बंधन है, और आत्म-बोध ही एकमात्र मुक्ति है। उठो, जागो और भयमुक्त होकर जीवन के परम सत्य में स्थित हो जाओ।

अध्याय ३१: अद्वैत मनोविज्ञान और अंतर्मन का शोधन (Mind Transmutation)

मानसिक तनाव, अवसाद (Depression), चिंता (Anxiety) और मनोविकार केवल आधुनिक जीवनशैली की देन नहीं हैं, बल्कि यह मन का आत्मा से अलगाव का परिणाम हैं।

१. मनोविश्लेषण **(Psychoanalysis)** की सीमा और वेदांत की दृष्टि

पश्चिमी मनोविज्ञान मन के दुखों को ठीक करने के लिए केवल अवचेतन मन (Unconscious Mind) की परतों में उलझा रहता है। अद्वैत वेदांत मन को ठीक करने का प्रयास करने के बजाय मन से पार जाने का मार्ग दिखाता है।

पंचकोश सिद्धांत **(Taittiriya Upanishad):** मनुष्य का स्वरूप केवल 'मनोमय कोश' तक सीमित नहीं है। मन के पार 'विज्ञानमय कोश' (विवेक) और उसके पार 'आनंदमय कोश' (शुद्ध चेतना) है। जब साधक मन के विचारों से खुद को अलग करके विवेक को जाग्रत करता है, तो मन के रोग स्वतः शांत होने लगते हैं।

२. भावनाओं का रूपांतरण **(Emotional Transmutation)**

क्रोध, काम, लोभ और भय को दबाना (Suppression) या उनमें बह जाना (Indulgence)—दोनों ही अज्ञान हैं।

"भावों से युद्ध मत करो, उन्हें केवल साक्षी भाव से उठते और लीन होते देखो।"

जैसे अग्नि में डाला गया ईंधन भस्म हो जाता है, वैसे ही जाग्रत साक्षी चेतना की उपस्थिति में उठने वाला कोई भी नकारात्मक भाव या विकार टिक नहीं पाता।

अध्याय ३२: अद्वैत काव्यात्मक अभिव्यक्ति — आत्म-बोध के छंद

सत्य केवल शुष्क तर्क का विषय नहीं है; जब ब्रह्म ज्ञान हृदय में उतरता है, तो वह सहज काव्य और परम आनंद बनकर बहता है।

१. निर्वाणषट्कम् (महर्षि शंकराचार्य)

"मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।

न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥"

(मैं न मन हूँ, न बुद्धि, न अहंकार, न चित्त हूँ। मैं न कान, न जीभ, न नाक, न आँख हूँ। मैं न आकाश, न पृथ्वी, न अग्नि, न वायु हूँ। मैं तो केवल आनंदस्वरूप शिव हूँ, शिव हूँ।)

२. अद्वैत बोध का सहज पद

"न कोई मेरा शत्रु है, न कोई है पराया।

मिट गया सब भेद जब, हटने लगी यह माया॥

जो मुझमें है स्पंदन, वही जग में समाया।

अद्वैत के इस बोध ने, निर्भय पद दिलाया॥"

अध्याय ३३: (Epilogue) — निर्भय मानवता का आह्वान

यह ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति, विचार या कालखंड की उपज नहीं है; यह उस शाश्वत चेतना की पुकार है जो हर मनुष्य के भीतर गूँज रही है।

भय का अंत करो: न ईश्वर से डरो, न काल या मृत्यु से, न किसी ढोंगी व्यवस्था से। तुम स्वयं उस परम निर्भय ब्रह्म का रूप हो।

विवेक की तलवार उठाओ: जो अंधविश्वास, कुरीति या परंपरा मनुष्य को नीचा दिखाए, बाँटे या भयभीत करे—उसे अपने विवेक से काटकर फेंक दो।

जाग्रत जीवन जियो: हर क्षण सजग रहो। कर्म करो पर कर्ता-भाव का अहंकार मत रखो। प्रेम करो पर अधिकार मत जमाओ।

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
अज्ञान की निद्रा से जागो, अपने आत्म-स्वरूप को पहचानो और इसी जीवन में अभय पद को प्राप्त करो।"

अध्याय ३४: बाह्य भेषाचार, नागा परंपरा, पदवी-संस्कृति और वास्तविक ब्रह्म ज्ञान

समाज में यह धारणा गहराई से जमा दी गई है कि जो जितना अधिक विचित्र दिखेगा, जिसने वस्त्रों का त्याग कर दिया होगा, शरीर पर भस्म लपेट रखी होगी, जटाएँ बढ़ा रखी होंगी या जिसके पास 'महामंडलेश्वर' जैसी भारी-भरकम पदवियाँ होंगी—वही उतना बड़ा 'ब्रह्मज्ञानी' या संत होगा।

अद्वैत वेदांत और विवेक की कसौटी पर इस बाह्य भेषाचार, शारीरिक हठ और पदवी-संस्कृति का निष्पक्ष, निडर और तार्किक विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है:

१. नागा साधु, दिगंबर अवस्था और भस्म का आडंबर

नागा परंपरा का एक ऐतिहासिक और सैन्य पृष्ठ-भूमि रही है (जहाँ मध्यकाल में अखाड़ों का गठन धर्म और मठों की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रधारियों के रूप में किया गया था)। परंतु इसे 'ब्रह्म ज्ञान की पराकाष्ठा' मान लेना अज्ञान है।

वस्त्र त्याग बनाम वासना त्याग: केवल चमड़ी से कपड़ा हटा देने (नग्न हो जाने) का नाम ब्रह्म ज्ञान नहीं है। यदि नग्न होना ही मुक्ति का कारण होता, तो जंगल के समस्त पशु-पक्षी पहले से मुक्त होते। असली प्रश्न यह है कि क्या मन के भीतर से वासना, अहंकार, क्रोध और संसार की तृष्णा का त्याग हुआ है?

शरीर पर भस्म (विभूति) लपेटना: भस्म प्रतीक है कि यह शरीर एक दिन राख हो जाएगा। परंतु प्रतीक को लपेटकर घूमना और उसे अपनी पहचान बना लेना 'अहंकार का नया रूप' (Spiritual Ego) बन जाता है। ज्ञानी भस्म को मन में धारण करता है, शरीर पर उसका प्रदर्शन नहीं करता।

"कपड़े उतारना आसान है, परंतु 'मैं कर्ता हूँ' और 'मैं विशिष्ट हूँ' के सूक्ष्म अहंकार को उतारना ही वास्तविक संन्यास है।"

२. हिमालय की गुफाओं में हठ-तपस्या बनाम वास्तविक समाधि

कई लोग मानते हैं कि जो बर्फ में नंगे पैर खड़ा है, एक पैर पर बरसों से तपस्या कर रहा है या गुफा में बैठा है, वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है।

शरीर को कष्ट देना तपस्या नहीं है: श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने हठपूर्वक शरीर को सुखाने और कष्ट देने वाली क्रियाओं को 'तामसी तप' कहा है और उसका कड़ा खंडन किया है:

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १७, श्लोक ५-६): "अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः... कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्द्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥" (जो मनुष्य शास्त्रविरुद्ध घोर तप को तपते हैं तथा शरीर के अंगों को और अंतःकरण में स्थित मुझे कष्ट देते हैं, उन अज्ञानियों को तुम असुरी स्वभाव वाला जानो।)

"अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः... कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्द्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥"
(जो मनुष्य शास्त्रविरुद्ध घोर तप को तपते हैं तथा शरीर के अंगों को और अंतःकरण में स्थित मुझे कष्ट देते हैं, उन अज्ञानियों को तुम असुरी स्वभाव वाला जानो।)

संसार से भागना बनाम साक्षी होना: गुफा में जाकर बैठ जाना और वहाँ भी मन में संसार के विचार चलाना समाधि नहीं है। सच्चा ब्रह्मज्ञानी वह है जो बाज़ार के कोलाहल में, गृहस्थी के बीच या युद्ध के मैदान में रहकर भी आंतरिक रूप से अचल और शांत रहता है।

३. 'महामंडलेश्वर', 'जगद्गुरु' और पदवियों का बाजारीकरण

आज अखाड़ों और संस्थाओं में 'महामंडलेश्वर', 'मंडलेश्वर' या '१०८ श्री' जैसी पदवियाँ गाड़ियों, लावलश्कर, सोने के सिंहासनों और धन के लेन-देन के आधार पर दी और बाँटी जाती हैं।

ब्रह्म ज्ञान का पदवियों से कोई संबंध नहीं: ब्रह्म ज्ञान कोई डिग्री, पद या उपाधि नहीं है जो किसी संस्था या अखाड़े द्वारा दी जा सके। ब्रह्म तो पदवी-रहित (Formless and Nameless) सत्ता है।

अहंकार का संस्थागत रूप: जब कोई व्यक्ति स्वयं को 'महामंडलेश्वर' कहलाने में गर्व महसूस करता है, वीआईपी सुविधाओं की माँग करता है, तो वह ब्रह्म ज्ञानी नहीं बल्कि 'संस्थागत अहंकार' का शिकार व्यक्ति है।

विवेकचूड़ामणि **(**महर्षि शंकराचार्य**):** *"*न वेशो न च लिङ्गं वा मुक्तिहेतुर्महात्मनाम्।*"* *(*न विशेष वेशभूषा और न ही कोई बाह्य प्रतीक या चिह्न महात्माओं की मुक्ति का कारण बनता है।*)*

*"*न वेशो न च लिङ्गं वा मुक्तिहेतुर्महात्मनाम्।*"*
*(*न विशेष वेशभूषा और न ही कोई बाह्य प्रतीक या चिह्न महात्माओं की मुक्ति का कारण बनता है।*)*

४. सत्य की कसौटी — कौन है वास्तविक ब्रह्मज्ञानी**?**

अद्वैत वेदांत के अनुसार किसी व्यक्ति को उसकी वेशभूषा, जटा, नग्नता, तपस्या या पदवी से मत जाँचिए। ब्रह्म ज्ञानी की केवल ३ ही वास्तविक पहचान हैं:

अहंकार**-**शून्यता और सहजता**:** जिसके भीतर 'मैं ज्ञानी हूँ' या 'मैं सिद्ध हूँ' का रत्ती भर भी अभिमान न हो। जो वेश और बिना वेश—दोनों में पूर्णतः सहज हो।

समदृष्टि **(Universal Equality):** जो किसी राजा और रंक, नागा और गृहस्थ, पुरुष और स्त्री में कोई भेद न देखे। जिसके लिए सबमें एक ही चेतना प्रवाहित हो रही हो।

निर्भयता और करुणा**:** जो न किसी से डरता हो, न किसी को डराता हो (भयमुक्ति) और जिसका पूरा जीवन प्राणिमात्र के प्रति निष्काम प्रेम और सेवा बन गया हो।

*"*नागा होना या महामंडलेश्वर बनना एक सामाजिक/संस्थागत पहचान हो सकती है, परंतु उसे 'ब्रह्म ज्ञान' मान लेना अज्ञान का ढोंग है। ब्रह्म ज्ञान केवल आंतरिक जाग्रत चेतना का नाम है।*"*

अध्याय ३५: लोक-संग्रह, सामाजिक न्याय और क्रांति — अद्वैत की क्रियात्मक परिणति

प्रायः अध्यात्म को केवल व्यक्तिगत शांति, मोक्ष या समाधि तक सीमित मान लिया जाता है। यह सोच अद्वैत वेदांत के अधूरे बोध का परिणाम है। जब कोई साधक 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का साक्षात्कार करता है, तो वह निष्क्रिय होकर नहीं बैठता; उसकी चेतना समाज में करुणा, न्याय और क्रांति के रूप में बहने लगती है।

१. **'**लोक**-**संग्रह**'** का वास्तविक अर्थ

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने 'लोक-संग्रह' का सिद्धांत दिया है—अर्थात् समाज के कल्याण, न्याय और संतुलन के लिए कर्म करना।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ३, श्लोक २०): "लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।" (संसार के कल्याण और समाज को सही दिशा देने के उद्देश्य से ही तुम्हें कर्म करना चाहिए।)

"लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।"
(संसार के कल्याण और समाज को सही दिशा देने के उद्देश्य से ही तुम्हें कर्म करना चाहिए।)
एक ब्रह्म ज्ञानी व्यक्तिगत लाभ, प्रसिद्धि या पुरस्कार के लिए कर्म नहीं करता, बल्कि समाज में व्याप्त अन्याय, शोषित वर्गों के उत्पीड़न और पाखंड को मिटाने के लिए निर्भय होकर खड़ा होता है।
२. अध्यात्म और सामाजिक न्याय **(Social Justice)**
यदि कोई व्यक्ति स्वयं को 'ब्रह्मज्ञानी' कहे लेकिन समाज में व्याप्त भेदभाव, छुआछूत, जातिगत उत्पीड़न या असमानता को देखकर चुप रहे, तो उसका ज्ञान केवल बाह्य आवरण है।
जब सबमें एक ही ब्रह्म है, तो किसी को नीचा या अछूत मानना ब्रह्म का ही अपमान है।सच्चा अद्वैतवादी समाज में समता और करुणा की स्थापना के लिए सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात करता है।

अध्याय ३६: भाषा, शब्द-जाल (Dogma) और सम्मोहन से मुक्ति

सत्य को उजागर करने के लिए शास्त्रों और शब्दों का उपयोग किया जाता है, परंतु अज्ञानता के कारण मनुष्य 'शब्दों' को ही सत्य मान बैठता है और भाषा के सम्मोहन में फँस जाता है।
१. 'शब्द-जाल' और मानसिक गुलामी
धार्मिक संस्थान, गुरु और पंडित अक्सर संस्कृत के कठिन श्लोकों, रहस्यमयी शब्दावालियों और भयावह भविष्यवाणियों का उपयोग करके आम जनता के मन में सम्मोहन (Hypnosis) पैदा करते हैं।

विवेकचूडामणि (महर्षि शंकराचार्य - श्लोक ६०): "शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्।
अतस्तत्त्वेन वक्तव्यं ब्रह्मज्ञानं विचक्षणैः॥" (शब्दों का जाल एक घना जंगल है जो चित्त को भ्रमित करता है। इसलिए विद्वानों को चाहिए कि वे ब्रह्म ज्ञान को अत्यंत सरल और स्पष्ट रूप से कहें।)

"शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्।
अतस्तत्त्वेन वक्तव्यं ब्रह्मज्ञानं विचक्षणैः॥"

(शब्दों का जाल एक घना जंगल है जो चित्त को भ्रमित करता है। इसलिए विद्वानों को चाहिए कि वे ब्रह्म ज्ञान को अत्यंत सरल और स्पष्ट रूप से कहें।)

२. शब्द से निशब्द की ओर

शास्त्र केवल 'इशारा' (Pointer) हैं, वे स्वयं सत्य नहीं हैं। जैसे उंगली से चंद्रमा की ओर इशारा किया जाए, तो समझदार व्यक्ति चंद्रमा को देखता है, उंगली को नहीं। उसी प्रकार, शब्द केवल ब्रह्म की ओर संकेत करते हैं। वास्तविक सत्य शब्दों के पार, स्वयं की मौन जाग्रत चेतना में अनुभव होता है।

अध्याय ३७: अद्वैत कला, सौंदर्यबोध और जीवन-रस

ब्रह्म ज्ञान जीवन को शुष्क, नीरस या त्यागी-अनुरागी का उदास जीवन नहीं बनाता। इसके विपरीत, यह जीवन के प्रत्येक क्षण को कला, सौंदर्य और अखंड उत्सव में बदल देता है।

१. 'रसो वै सः' — आनंद स्वरूप ब्रह्म

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म को 'रस' (आनंद का अंतिम स्रोत) कहा गया है:

तैत्तिरीयोपनिषद् (२.७.१): *"रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।" (वह परम तत्त्व रस रूप है। उस रस को पाकर ही यह जीव आनंदित होता है।)*

जब मन का भय और अहंकार मिट जाता है, तो संगीत, कला, साहित्य, प्रकृति की सुंदरता और मानवीय संवेदनाएँ अपने सबसे शुद्ध और आनंदमयी रूप में प्रकट होती हैं।

२. जीवन ही महा-उत्सव है

ज्ञानी के लिए हर दिन, हर सांस और हर कर्तव्य एक उत्सव है। वह संसार के नाटकों में अभिनय पूरी कुशलता से करता है, परंतु जानता है कि परदे के पीछे सब एक ही चैतन्य सत्ता का खेल है।

अध्याय ३८: आधुनिक साधक की दिनचर्या — 'सहज समाधि' का नियम

इस अध्याय में एक आधुनिक, कामकाजी व्यक्ति के लिए २४ घंटे की एक व्यावहारिक 'सहज समाधि सारणी' प्रस्तुत की गई है, जिससे वह संसार में रहते हुए भी अद्वैत स्थिति में स्थिर रह सके:

समय/अवधि	साधना का स्वरूप	व्यावहारिक अभ्यास
प्रातः (जागरण)	आत्म-बोध	बिस्तर छोड़ने से पहले ५ मिनट शांत बैठें। स्मरण करें: "मैं शरीर नहीं, इसे जानने वाली शुद्ध साक्षी चेतना हूँ।"
कार्यकाल (दिनभर)	सजग कर्मयोग	काम करते समय निर्णय निष्पक्षता से लें। सफलता पर अहंकार न करें, विफलता पर डिप्रेशन में न जाएँ।
संबंध (इंटरैक्शन)	समदृष्टि	परिवार या सहकर्मियों से बात करते समय उनके बाह्य रूप के पार उनके भीतर की चेतना का सम्मान करें।
विराम (Break)	5-Second Pause	जब भी तनाव या गुस्सा आए, ५ सेकंड मौन रहकर मन में उठती तरंगों को दृष्टा होकर देखें।
रात्रि (सोने से पूर्व)	पूर्ण विसर्जन	दिनभर की खट्टी-मीठी स्मृतियों, विचारों और चिंताओं को ब्रह्म में

समर्पित कर निर्भय शयन करें।

अध्याय ३९: अध्यात्म और राजनीति — चेतना-आधारित लोक-नीति (Spiritual Politics)

राजनीति और अध्यात्म को प्रायः एक-दूसरे का विरोधी माना जाता है। यह धारणा इसलिए बनी क्योंकि राजनीति 'सत्ता और छल' का खेल बन गई है और अध्यात्म 'संसार से भागने' का माध्यम। परंतु अद्वैत दृष्टि में राजनीति जब विवेक और निष्काम चेतना पर आधारित होती है, तो वह समाज कल्याण का सबसे सशक्त माध्यम बन जाती है।

१. 'राजर्षि' की अवधारणा

प्राचीन भारतीय परंपरा और प्लेटो के 'Philosopher King' (दार्शनिक राजा) का सिद्धांत एक ही सत्य की ओर संकेत करते हैं— शासन वही चलाए जो आंतरिक रूप से निस्पृह, लोभ-मुक्त और जाग्रत हो।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय ४, श्लोक २): *"एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदः।" (इस परम निष्काम योग-विद्या को परंपरा से राजर्षियों—ज्ञानी राजाओं—ने जाना।)*

"एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदः।"
(इस परम निष्काम योग-विद्या को परंपरा से राजर्षियों—ज्ञानी राजाओं—ने जाना।)
जब शासक स्वयं को सत्ता का स्वामी न मानकर जनता और समाज का 'ट्रस्टी' (संरक्षक) मानता है, तो भ्रष्टाचार, तानाशाही और तुष्टीकरण का अंत स्वतः हो जाता है।
२. धर्म-निरपेक्षता बनाम पंथ-निरपेक्ष अद्वैत
आज की राजनीति धर्म के नाम पर संप्रदायवाद, वोट-बैंक और भय का व्यापार करती है।

अद्वैत राजनीति किसी संकीर्ण पूजा-पद्धति या कर्मकांड पर आधारित नहीं होती।

इसका एकमात्र धर्म 'मानवता, न्याय और सर्व-समभाव' है। यह किसी विशेष समूह का नहीं, बल्कि संपूर्ण सृष्टि की भलाई (सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय) का मार्ग प्रशस्त करती है।

अध्याय ४०: मृत्युंजय साधना — काल, मृत्यु और अमरता का परम साक्षात्कार

मनुष्य का सबसे बड़ा भय 'काल' (Time) और 'मृत्यु' (Death) का भय है। अज्ञान के कारण मनुष्य काल के प्रवाह में बहता है और खुद को क्षणभंगुर मानता है। अद्वैत बोध मनुष्य को काल के पार (Timeless Consciousness) ले जाता है।

१. काल **(Time)** का मनोवैज्ञानिक भ्रम

भूतकाल केवल 'स्मृति' (Memory) है और भविष्य केवल 'कल्पना' (Projection) है। दोनों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। केवल यह 'वर्तमान क्षण' (The Eternal Now) ही सत्य है।

मांडूक्योपनिषद् **(**मंत्र १**):** *"त्रि Strivari तच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥" (भूत, वर्तमान और भविष्य—इन तीनों कालों से अतीत जो चैतन्य सत्ता है, वही ओंकार/ब्रह्म है।)*

"त्रि Strivari तच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥"
(भूत, वर्तमान और भविष्य—इन तीनों कालों से अतीत जो चैतन्य सत्ता है, वही ओंकार/ब्रह्म है।)

जब साधक भूत के पश्चाताप और भविष्य की चिंता को छोड़कर वर्तमान की साक्षी चेतना में स्थित हो जाता है, तो वह काल के चक्र से मुक्त हो जाता है।

२. अमरता का साक्षात्कार **(Conquering Mortality)**

अमरता का अर्थ इस चमड़े के शरीर का हमेशा जीवित रहना नहीं है; अमरता का अर्थ यह जानना है कि **"मैं वह चेतना हूँ जो शरीर के पैदा होने से पहले भी थी, इसके रहने के दौरान भी है और इसके नष्ट होने के बाद भी अछूती रहेगी।"**

"जिसने अपने वास्तविक स्वरूप को जान लिया, उसके लिए मृत्यु कोई त्रासदी नहीं, बल्कि केवल पुराने परिधान का उतरना है।"

अध्याय ४१: आधुनिक विज्ञान, कॉस्मोलॉजी **(Cosmology)** और **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**

खगोल विज्ञान (Astronomy) और कॉस्मोलॉजी जैसे-जैसे ब्रह्मांड के रहस्यों की खोज कर रहे हैं, वे उपनिषदों के उस सत्य के करीब पहुँचते जा रहे हैं जिसे ऋषियों ने हज़ारों वर्ष पूर्व ध्यान की गहराई में देखा था।

१. ब्रह्मांड की उत्पत्ति और **'**नासदीय सूक्त**'**

ऋग्वेद का नासदीय सूक्त **(**१०.१२९**)** ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सबसे वैज्ञानिक और गंभीर

दार्शनिक विवरण प्रस्तुत करता है:

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥"

(सृष्टि से पहले न असत था, न सत; न अंतरिक्ष था, न आकाश। तब क्या आच्छादित था? कहाँ और किसकी शरण में? क्या वह अगाध जल था?)

यह सूक्त स्पष्ट करता है कि सृष्टि की रचना किसी व्यक्ति-विशेष ईश्वर ने छह दिनों में नहीं की, बल्कि यह उस एक अज्ञात, अनंत चेतना का स्वतः-स्फूर्त विस्तार (Big Bang/Emergence) है।

२. 'यत्पिंडे तत्ब्रह्माण्डे' **(As in the Microcosm, so in the Macrocosm)**

आधुनिक विज्ञान सिद्ध कर चुका है कि हमारे शरीर का एक-एक परमाणु (Atom) उन्हीं तारों और आकाशगंगाओं की राख से बना है जो ब्रह्मांड में तैर रहे हैं।

जो सूक्ष्म (Micro) में है, वही विराट (Macro) में है।

मनुष्य ब्रह्मांड से अलग कोई बाहरी प्राणी नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण ब्रह्मांड ही मनुष्य के रूप में स्वयं को अनुभव कर रहा है।

अध्याय ४२: अद्वैत क्रांति का पथ-प्रदर्शन — 'जाग्रत समाज' की घोषणा

इस महा-ग्रंथ के ४२ अध्यायों की यह यात्रा केवल बौद्धिक विलास के लिए नहीं है। यह आने वाली पीढ़ियों के लिए अज्ञान, पाखंड और भय के विरुद्ध एक 'वैचारिक महा-अस्त्र' है।

जाग्रत समाज के ४ संकल्प:

अंधविश्वास का पूर्ण बहिष्कार: हम किसी भी ऐसी मान्यता, टोने-टोटके, ज्योतिषीय भय या ढोंगी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करेंगे जो विवेक और वैज्ञानिक सोच के विरुद्ध हो।

संस्थागत धार्मिक शोषण का अंत: हम धर्म को व्यापार, पदवी और वीआईपी संस्कृति बनने से रोकेंगे। ईश्वर और जीव के बीच किसी मध्यस्थ (Broker) की आवश्यकता नहीं है।

मानवीय समता का उद्घोष: हम जाति, धर्म, वर्ग, लिंग या नस्ल के आधार पर किए जाने वाले हर भेद को 'अविद्या' मानकर उसका खंडन करेंगे।

अखंड साक्षी जीवन: हम जीवन के हर क्षेत्र (गृहस्थ, व्यापार, राजनीति, शिक्षा) में निष्काम कर्म और साक्षी चेतना के साथ निर्भय जीवन जिएंगे।

॥ इति 'ब्रह्म ज्ञान'महाग्रंथ संपूर्णम् ॥